श्रीगुरुगीता

हिन्दी व्याख्या सहित

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

व्याख्याकार
श्री प्रेमनाथ हण्डू,
साहित्य शास्त्री, प्रभाकर,

सम्पादक
श्री त्रिलोकी नाथ भट्ट, शास्त्री
एम० एस० सी०, बी० एड०, प्रभाकर

भूमिका लेखिका
प्रो० डॉक्टर कौशल्या वल्ली,

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

प्राक्कथन

आध्यात्मिक उन्नति के लिए गुरु–कृपा अतीव आवश्यक है। जगद्गुरु भगवान गोपीनाथ जी ने भी– जो इस शताब्दी के ईश्वरकोटि सन्तों में अग्रिम थे– कहा है कि आध्यात्मिक उन्नति के लिए दो साधन अनिवार्य है– साधक का अपना पुरुषार्थ एवं गुरु की कृपा, अर्थात् गुरु–कृपा विना केवल पुरुषार्थ से ही कोई भी साधक उन्नति नहीं कर सकता। उन के कथनानुसार अपने सद्गुरु के पूजन की ओर प्रवृत्ति ईश्वर–कृपा के फलस्वरूप ही हो सकती है।

सद्गुरु के लक्षण, उनका महत्व, शिष्य का उन के प्रति व्यवहार, उन के पूजन का महत्व, उन की स्तुति–इस सब के विषय में स्वयं भगवान शंकर ने – जो अध्यात्मज्ञान के उद्गमस्थान तथा गुरुओं के भी गुरु हैं–जगज्जननी पार्वती जी के साथ संवाद में एक बार बोला था। वह सारा संवाद 'श्री गुरुगीता' नाम वाले आगम शास्त्र में दिया हुआ है। इस शास्त्र के नित्य पाठ का भी बहुत महत्व है। स्वयं जगद्गुरु भगवान गोपीनाथ जी भी अपनी साधना के आदिम चरणों में इस का पाठ किया करते थे।

'श्री गुरुगीता' शास्त्र के महत्व को देखते हुए श्री भगवान गोपी नाथ जी ट्रस्ट के सदस्यों तथा जगद्गुरु भगवान जी के एक प्रेमी, स्वर्गीय श्री गोविन्द कौल, ने निर्णय लिया कि इस को साधकों के हितार्थ प्रकाशित किया जाए, पर एक बड़ी कठिनाई यह आई कि इस शास्त्र की हस्तलिपि कहाँ से मिले ? जो हस्तलिखित प्रति जगद्गुरु भगवान जी के पास थी वह उपलब्ध नहीं हो सकी। सुना गया कि 'श्रीगुरुगीता' की हस्तलिखित प्रतियाँ कई कशमीरी पण्ड़ितों के पास हैं, परन्तु वे उन्हें अपने कुटुम्बों से बाहर किसी को भी नहीं दिखाते। महत्वपूर्ण ग्रन्थों को किसी पराये को न दिखाने की इस प्रवृत्ति से हमारे बहुत से प्राचीन ग्रन्थ लुप्त हो गए हैं।

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

(ख)

सौभाग्य से श्री भगवान जी की एक भक्त तथा ट्रस्ट की एक सदस्या, कुमारी जयकिशोरी जी पटवारी, के प्रयत्नों के फलस्वरूप हम श्री स्वामी ज़नकाक तुफ़ची के शिष्य, श्री स्वामी आप्ताभ जू वाङ्.नू.की शारदा लिपि में हस्तलिखित, लगभग सौ वर्ष पुरानी, प्रति की देवनागरी में एक प्रतिलिपि बनवा सके। कुछ देर बाद हमें शारदा लिपि में लिखी एक और प्रति भी मिली। श्री मेजर राधाकृष्ण रैना ने देवनागरी प्रतिलिपि को इस प्रति से मिलाया, जिस के लिए हम उन के आभारी हैं।

फिर एक और कठिनाई सामने आई। प्रतिलिपि में बहुत सी अशुद्धियां थीं। ऐसा प्रायः कुछ हस्तलिखित ग्रन्थों में पाया जाता है, क्योंकि प्रतिलिपियां बनाने वाले कुछ लेखक या तो व्याकरण के नियमों से अनभिज्ञ होंगे, या फिर उन्होंने अपने काम के प्रति असावधानी बरती होगी।

हम स्वर्गीय श्री जगन्नाथ चन्द्र, श्री त्रिभुवननाथ शास्त्री तथा श्री त्रिलाकीनाथ भट्ट शास्त्री के आभारी हैं, जिन्होंने हमारी देवनागरी प्रति से अशुद्धियां निकालने में पर्याप्त सहायता की।

हमारे आजकल के अधिकतर नवयुवक तथा नवयुवतियां प्रायः हिन्दी की अपेक्षा अंगरेज़ी भाषा को अधिक सुगमता से पढ़ते–समझते हैं। उन के तथा विदेशी पाठकों के लिए 'श्रीगुरुगीता' का पहला संस्करण अंगरेज़ी अनुवाद सहित पहले ही प्रकाशित किया गया है। प्रस्तुत संस्करण के लिए स्व० श्री प्रेमनाथ हण्डू साहित्य शास्त्री ने, हमारे भूतपूर्व प्रधान, स्वर्गीय प्रो० काशीनाथ धर की प्रार्थना पर, हिन्दी में व्याख्या लिखी है। श्री त्रिलोकीनाथ भट्ट शास्त्री ने इसका सम्पादन किया है। इन दोनों महानुभावों तथा भूमिका–लेखिका, डॉ० कौशल्या वल्ली, को हम हार्दिक धन्यवाद देते हैं।

आशा है यह संस्करण हिन्दी जानने वाले साधकों का पथ–प्रर्दशन करेगा।

प्रो० जानकी नाथ शर्मा,
प्रधान
श्री भगवान गोपीनाथ जी ट्रस्ट

१ फरवरी, १९८७

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

भूमिका

गुरु क्या है ? अन्धेरे– अज्ञान के अन्धेरे– को दूर करने वाली शक्ति तथा प्रकाश–ज्ञानप्रकाश– में रमण कराने वाली शक्ति गुरु है। गुरु कोई देह नहीं होता। स्वयं भगवान गुरु होता है। गुरु कभी मरता नहीं है। वह नित्य, शाश्वत, अजर और अमर है।

मानव विवेकशील प्राणी है। मनुष्य तथा अन्य प्राणियों में मानव सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। वह चाहे तो नीर–क्षीर–विवेक करने की क्षमता रखता है। संसार में रह कर संसार से परे रहने की शक्ति वास्तविक मानवता का चिन्ह है।

मायावी प्रपञ्च से घिरा हुआ मानव लोभ, प्रतिष्ठा, यश के पाश में आबद्व, जब अपने को खोया सा पाता है, तब उसे किसी मार्गदर्शक की सच्ची खोज होती है। अपने को पाने की तड़प में तथा काम, क्रोध, लोभ, मोह और ईर्ष्या में, वह जब संघर्ष देखता है, तो ढूँढता है पथप्रर्दशक। ऐसे कठिन और क्रूर समय में जो उस का आलम्बन बनता है, जो उस को गिरने से बचाता है–वही है उस का गुरु।

कश्मीर के शैवदर्शन में गुरु की परम्परा में शक्तिपात का अत्यन्त महत्व है। भगवान् की अजस्र कृपा बरसती रहती है। मात्र उन्मुख होने की आवश्यकता है।

मूत्र और विष्टा में सने शिशु को वात्सल्य से ओतप्रोत मां अत्यन्त प्यार से, पानी और साबुन का सहारा ले कर, निज हाथों से विष्टा और मलमूत्र धो लेती है। शिशु, माँ की गोद में, पुनः स्वच्छ हुआ, शान्त हो कर दुग्धपान करता है।

मानव शिशु–तुल्य सरल होकर जब मनोमालिन्य को धोने की हार्दिक अपेक्षा रखता है, माता–तुल्य गुरु उस समय अपने को प्रकट

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

(घ)

करके,शिष्य के मन के मल को धोने के भार को उठाने के लिए उपस्थित होता है। गुरु–कृपा सदा सर्वदा अजस्र बहती रहती है। केवल क्षुद्र अहं से रहित होने की आवश्यकता है। सच्ची तड़प, अपने को पहचानने की सच्ची प्यास हो, तो गुरु स्वयं प्रकट हो जाते हैं। सच्चा शिष्य होना अतीव कठिन है।

श्री 'गुरुगीता' मे १६५ श्लोक हैं। 'गुरु' शब्द की व्युत्पत्ति एवं गुरु का महत्व इस पुस्तक में समझाया गया है। आज के युग में जब गुरु के नाम से अत्याधिक पाखण्ड यत्र तत्र सर्वत्र देखने को मिलता है, 'गुरुगीता' का १४४ वॉ श्लोक विचारणीय है:–

"सत् शिष्यैः गुरवः सेव्या ऐक्यभक्त्या विचार्य च।
न यावद् गुरुः–कारुण्यं लभेत् न मोक्षकारणम्।

सच्चे अर्थ में जो शिष्य हैं तथा सद्गुरु की खोज में हैं, उन्हे विचार के स्वगुरु का चयन करना चाहिये। चयनोपरान्त, एकनिष्ठ भक्ति से गुरु की सेवा करनी चाहिए। १३३ वें श्लोक में स्पष्ट रूप से गुरु को खोजने का उपाय बतलाया है :–

मधु–लुब्धो यथा भृंगः पुष्पात्पुष्पान्तरं व्रजेत्।
ज्ञानलुब्धस्तथा शिष्यो गुरोः गुर्वन्तरं व्रजेत्।।

मधुलोभी भँवरा जैसे मधुसंचय के लिए एक पुष्प से दूसरे पुष्प पर उड़ता रहता है, वैसे ही सद्गुरु की प्राप्ति तक, ज्ञान के इच्छुक शिष्य ने एक सन्त से सत्संगति प्राप्त करके, दूसरे सन्त की सत्संगति प्राप्त करनी चाहिए।

ज्ञानहीन, मिथ्यावादी तथा दम्भी गुरु का त्याग करना चाहिए– 'गुरुगीता' सुशिष्य को ऐसा उपदेश देती है।

गुरु पांच प्रकार के कहे गए हैं–गुप्त, दृढ़, भक्त, मौन एव सांसारिक कामनाओं से विरक्त।

सद्गुरु ने भी पाखण्डी, पापरत, नास्तिक, भेदबुद्धि वाले, स्त्रीलम्पट, दुराचारी, कृतघ्न, बगुले की वृत्तिवाले, कर्मभ्रष्ट, क्षमारहित,निन्दक, तर्कवादी,

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

(ड.)

कामी, क्रोधी, हिंसक तथा शठ शिष्यों का त्याग करना चाहिए। नित्य पापविरोधी शिष्य को ही ज्ञान देना चाहिए।

गुरु–शिष्य–सम्बन्ध अतीव नाज़ुक, पवित्र तथा आनन्ददायक है।

सद्गुरु की प्राप्ति बड़े सौभाग्य से होती है। सत् शिष्य होना भी परम सौभाग्य है।

'श्रीगुरुगीता' की हिन्दी व्याख्या अधिकाधिक जिज्ञासुओं को लाभान्वित करेगी–ऐसा विश्वास है, और है अदम्य आशा।

भगवान श्री गोपीनाथ जी ट्रस्ट 'श्रीगुरुगीता' की हिन्दी व्याख्या के प्रकाशन के लिए हार्दिक धन्यवाद का पात्र है।

१८–२–१९८६
(श्री रामकृष्ण परमहंस
जयन्ती दिवस)

कौशल्या वल्ली,
(प्रो० डा० कौशल्या वल्ली)
२०, राजेन्द्र नगर, कनाल,
जम्मू (तवी)

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

ॐ

ॐकार विराट्–स्वरूप का मूल है। उस के बिना कुछ भी सम्भव नहीं ।

अहंकार को तिलाञ्जलि का अर्थ ॐकार पर ध्यान एकाग्र करना है, जिस के द्वारा ही आत्म–साक्षात्कार सम्भव हो सकता है।

आत्मा, विचार (विवेक) द्वारा जानी जा सकती है।

भगवत्–प्राप्ति के लिए अपना परिश्रम और गुरु–अनुग्रह अत्यावश्यक हैं।

मनुष्य पढ़ते–पढ़ते नील पत्थर बन जाता है, यदि वह पढ़ कर उस के अनुसार आचरण न करे, पढ़–पढ़ कर चार वेदो का मंथन करने पर भी वह अभागा ही रह जाता है।

संसार के साथ अनुरक्त–सा होते हुए भी, जो सभी कामनाओं का त्यागी है, वह शेर की भांति गर्ज कर भव–सागर लांघ लेता है।

–जगद्गुरु भगवान गोपीनाथ जी

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

ॐ श्री गणेशाय नमः
ॐ श्री गुरवे नमः

ॐ अस्य श्री गुरुगीतास्तोत्रमंत्रस्य श्री सदाशिव ऋषिः, विराट् छन्दः, श्री गुरुः गोपीनाथो देवता, हं बीजं, सः शक्तिः, सोहं कीलकं, श्री गुरुप्रसादसिद्ध्यर्थं पाठे विनियोगः।

अथ न्यासः

ॐ हं सां सूर्यात्मने अंगुष्ठाभ्यां नमः
ॐ हं सीं सोमात्मने तर्जनीभ्यां नमः
ॐ हं सूं निरञ्जनात्मने मध्यमाभ्यां–नमः
ॐ हं सैं निराभासात्मने अनामिकाभ्यां नमः
ॐ हं सौं अतनुसूक्ष्मात्मने कनिष्ठिकाक्यां नमः
ॐ हं सः अव्यक्तात्मने करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

इति करन्यासः

ॐ हं सां सूर्यात्मने हृदयाय नमः
ॐ हं सीं सोमात्मने शिरसे स्वाहा
ॐ हं सूं निरञ्जनात्मने शिखायै वौषट्
ॐ हं सैं निराभासात्मने कवचाय हुम्
ॐ हं सौं अतनुसूक्ष्मात्मने नेत्रत्राय वौषट्
ॐ हं सः अव्यक्तात्मने अस्त्राय फट्।

इति षडंगन्यासः।

१

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

ॐ भूर्भुवः स्वरोम् इति दिग्बंधः।

अथ ध्यानम्

हंसाभ्यां परिवृत्त–पत्रकमलं दिव्यं जगत् कारणम्
विश्वोत्तीर्णं अनेक–देह–निलयं स्वशक्तिं आत्मेच्छया।
तत्–तत्'–स्यूत–विभाविशिष्टं अमलं भावैकदीपं परम्
प्रत्यक्षाक्षर–विग्रहं गुरुवरं ध्याये विभं शाश्वतम्।।
विश्वे व्यापिनं आदिदेवं अमलं नित्यं परं निष्कलम्
नित्योद्बुद्ध–सहस्र–पत्र–कमलैः लिप्याक्षरैः मंडितम्।
नित्यानन्द–मयं सुखैकनिलयं सत्यं शिवं स्वप्रभम्
ध्यायेत् आत्मस्वरूपविज्ञं अचलं स्वातंत्र्यतः सर्वगम्।।

मेरे गुरुवर अपने ब्रह्मस्वरूप में नित्य रहते हैं। वे सर्वव्यापक हैं। वे 'हं' और 'सः' से कमल की पंखुड़ियों को खुलाने वाले हैं। बाहिर जाती और अन्दर आती सांस पर नियंत्रण रखने को प्राणाभ्यास कहते है। प्राणाभ्यास से कुंडलिनी–जागरण हो जाता है, और शरीर के षट्चक्र विलास में आ जाते है, जिससे साधक में ज्ञान का उदय हो जाता है। गुरुदेव प्राणाभ्यास सिखाकर उपरोक्त विकास का कारण बन जाते हैं। वे सारे जगत् के दिव्य कारण हैं। उनके कारण ही जगत् का विकास हो जाता है। संसार भी वही हैं और संसार से परे जो है वह भी वही हैं। असंख्य शरीरों में स्थित आत्मा ब्रह्मरूप गुरु ही है। अतः जीवधारियों के असंख्य शरीरों में गुरु ही बसे हैं। शक्तिमान् गुरु अपनी इच्छानुसार अपने ही में स्थित शक्ति को यथेष्ट मात्रा में बाहर प्रकट करते हैं। उनका प्रकाश ही भिन्न भिन्न पदार्थों में व्याप्त है। इसी से वे दिखते हैं और अपनी सत्ता धारण किए हुए हैं। वे मन और इन्द्रियों के ज्ञान से परे हैं। केवल अपने

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

अनुभव से ही उनसे साक्षात्कार हो सकता है, अन्यथा नहीं। सभी मंत्र उनका ही स्वरूप हैं अतः मंत्रों का गठन करने वाली संस्कृत वर्णमाला ही उनका प्रत्यक्ष शरीर है। मैं ऐसे गुरुदेव का ध्यान करता हूं। सारे बह्मांड में ब्रह्मस्वरूप गुरु ही व्याप्त हैं। यहाँ के नाना पदार्थ उनका ही रूप हैं। अतः वे ही सर्वत्र व्याप्त हैं। वे नित्य रहते हैं। अतः सृष्टि के आदि में भी गुरुदेव ही थे। सब से, सब कुछ से वे परे हैं। जब उनके अतिरिक्त दूसरी चीज़ है ही नहीं तो वे स्वतः सिद्ध अखंड़ और असीम हैं। मंत्रों का गठन करने वाले वर्णमाला के अक्षरों से वह शोभायमान हैं, मानो ये अक्षर दिन–रात खिले, हज़ारो पंखुड़ियों वाले कमल हों, जो मेरे गुरुदेव को शोभित करते हों। वे आनन्द – स्वरूप होने के कारण हमेशा अपने आनन्द में रहते हैं। सच्चा सुख केवल उन से मिल सकता है। वे नित्य रहने के कारण सत्य ही हैं। कल्याण–स्वरूप और कल्याणकारी हैं। वे अपने ही प्रकाश से प्रकाशमान हैं। अजर, अमर, अविकारी होने के कारण अचल हैं। सांसारिक जीवात्माएं अज्ञान में होने के कारण अपने स्वरूप को नहीं जानतीं, किन्तु गुरु अपने स्वरूप को अच्छी तरह जानते है। इन गुणों से समलंकृत गुरुदेव का ध्यान करना चाहिए। वे स्वतंत्र हैं और स्वातंत्र्य से जगत् की रचना करते हैं, और स्वयं सभी रचित पदार्थों में विद्यमान रहते हैं।

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

ॐ श्री गणेशाय नमः। ॐ श्रीगुरवे नमः

ॐ नमो भगवते गोपीनाथाय

अथ श्री गुरुगीता

'गुरुगीता' उपनिषत् कोटि में आने वाला शास्त्र है। इसी अभिप्राय से इसका नाम 'गुरु–गीतम्' नहीं अपितु 'गुरुगीता' रखा गया है। इस शास्त्र में गुरु को ईश्वर का समकक्ष ही नहीं अपितु ईश्वर से भी बड़ा माना गया है। वास्तव में हमें गुरु ही परमेश्वर का परिचय देते हैं, उन तक पहुँचने के लिए सहायक बनते हैं। तभी तो सन्त कबीर ने कहा था– 'बलिहारी गुरु आपने, गोविन्द दियो बताय'। इसी अभिप्राय से ऋषि (ग्रंथकर्ता) ब्रह्म से पहले अपने गुरु की ही वन्दना करते हैं। वन्दना करते समय ऋषि ने गुरु के आध्यात्मिक, सूक्ष्म रूप को दृष्टि मे रखा है।

वन्दे गुरुपद-द्वन्द्वं अवाङ्.मनस-गोचरम्।
रक्तशुक्ल-प्रभं उग्रं अप्रतर्क्य परं महत्।।१।।

ग्रंथकर्ता ऋषि कहते हैं– हमारे मन में महानता की जो सीमा आती है, गुरु की महानता उस सीमा को भी लांघ कर गई है। गुरु की महानता मन का विषय नहीं है। अर्थात् मन गुरु की महानता की कल्पना ही नहीं कर सकता। इस कारण गुरु की महानता का वर्णन वाणी के द्वारा कोई नहीं कर सकता। हमें वस्तुओं का ज्ञान इन्द्रियों द्वारा हो जाता है। सूक्ष्म पदार्थों के समझने में मन का चिन्तन सहायक होता है। जो पदार्थ मन के चिन्तन से भी परे है, वाणी द्वारा उसका वर्णन कैसे हो सकता है ?

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

ऐसा होने पर हम गुरु–देव के बारे में तर्क–वितर्क भी नहीं कर सकते। शास्त्रकार ने लिखा है–'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह' – उस परम–तत्व तक मन जा नहीं सकता–बीच में से ही मुड़ कर आ जाता है। वाणी का भी यही हाल है। मैं ऐसे ही गुरुदेव के चरणों की जोड़ी की स्तुति करता हूं। यह चरण लाल तथा सफेद रंग की चुंधियाने वाली चमक से परिपूर्ण हैं। 'रक्त' 'शुक्ल' 'उग्र' से क्रमशः रजोगुण, सत्वगुण तथा तमोगुण की ओर संकेत है। 'परं' से इन गुणों से परे होने का भी संकेत है। शैव शास्त्र में लिखा है– 'यो गुरुः स शिवः प्रोक्तः' –अर्थात्– गुरु ही शिव हैं, गुरु–सत्व, रजः तथा तमोगुण युक्त (त्रिगुणात्मक) होने पर भी गुणातीत हैं। इसी से गुरु 'अप्रर्तक्य' हैं। गुरु को समझने के लिए तर्क काम नहीं देता है'।

श्लोक में गुरु के स्थान पर गुरु–चरणों का प्रयोग अतिशय श्रद्धा व्यक्त करने के लिए किया गया लाक्षणिक प्रयोग है। 'मनसगोचरम्' व्याकरण की दृष्टि से समीचीन नहीं है। इसे आर्ष–प्रयोग मानना ठीक होगा।

अचिंत्या-व्यक्त-रूपाय निगुर्णाय महात्मने।
समस्त-जगत्-आधार-मूर्तये ब्रह्मणे नमः।।२।।

ब्रह्म परम आत्मा हैं। यहाँ उन्हें महात्मा (महान आत्मा) कहा गया है। जीवात्मा सीमित तथा कम शक्ति वाला है। परमात्मा, ब्रह्म, असीम और सर्वशक्तिमान् हैं। सीमित जीवात्मा के लिए ब्रह्म अचिन्त्य हैं। ब्रह्म सर्वत्र व्याप्त होने पर भी अस्पष्ट हैं। 'एको देवः सर्व–भूतेषु गूढ़ः– एक ही परम–आत्मा सभी पदार्थों में छिपा बैठा है। 'सर्वं खलु इदं ब्रह्म'– यह सारी सृष्टि ब्रह्म का ही रूप है।

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

जैसे तिलहन में तेल, दूध में मक्खन व्याप्त होने पर भी अस्पष्ट है, उसी प्रकार बह्म सर्वत्र विद्यमान होने पर भी अस्पष्ट हैं। ब्रह्म निराकार नीरूप होने के साथ साथ सत्व, रजः, तमः– इन तीन गुणों से परे हैं। सुख, दुःख, मोह उनको छूते नहीं। यह सारी सृष्टि त्रिगुणमय है। सृष्टिमय और सृष्टि से परे रहने वाले ब्रह्म त्रिगुणातीत हैं। इस सारी चर–अचर सृष्टि के आधार बह्म हैं। ब्रह्म स्वयं जगत् रूप में प्रकट हो जाते हैं। 'पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भव्यम्'– ऋग्वेद। अर्थात् जो कुछ आज तक बना हैं और जो आगे बनने वाला है, वह सब ब्रह्म ही है। कश्मीर के प्रसिद्ध तांत्रिक आचार्य महापडिंत साहिब कौल ने कहा है–'येनोत्कीर्ण विश्वचित्रं स्वभित्तौ'–ब्रह्म अपने को दीवार बना कर इस दीवार पर अपने आपको विश्व के रूप में उतार देते हैं। ऐसे ब्रह्म का चिन्तन करके मैं उन्हें नमस्कार करता हूं।

ऋषय ऊचुः

गुह्यात् गुह्यतरा विद्या गुरु-गीता विशेषतः।
त्वत् प्रसादात् च श्रोतव्या तत् सर्वं ब्रूहि सूत नः।।३।।

ऋषि लोग बोले :– हे सूत जी ! आद्यात्मिक ज्ञान गोपनीय होता है। 'गुरुगीता' शास्त्र गोपनीय से गोपनीय आद्यात्मिक शास्त्र है। अत एव यह शास्त्र मिलना आसान नहीं है। हां, यदि आपकी कृपा हो तो हम यह ज्ञानोपदेश सुन सकते हैं। हे सूत जी ! हम पर कृपा करके हमे 'गुरु–गीता'–संबन्धी सभी बातें आप विस्तार से कहें।

महर्षि पराशर के सुपुत्र व्यास जी अद्वितीय पंड़ित थे।

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

उन्होंने अठारह पुराणों की रचना की थी, और वेदों का विभाग किया था। महर्षि सूत उनके प्रिय शिष्य थे। सूत जी ने ही 'गुरु–गीता'–शास्त्र का ज्ञान ऋषियों को दिया था, क्योंकि–जैसा कि श्लोक से स्पष्ट है–उनको इस शास्त्र की बड़ी जिज्ञासा थी। अगले श्लोक से स्पष्ट होगा कि 'गुरु गीता' शास्त्र स्वयं भगवान् शिव ने पार्वती जी से कहा था। पार्वती जी ने भक्तों के उपकार के लिए इस शास्त्र का प्रचार किया।

सूत उवाच :–

कैलास-शिखरे रम्ये भक्ति-साधन-हेतवे।
प्रणम्य पार्वती भक्त्या शंकरं पर्यपृच्छत ।।४।।

ऋषियों के विनम्र प्रश्न के उत्तर में सूत जी बोले :– एक दिन (वर्तमान चीन देश में स्थित) कैलास पर्वत की सुन्दर चोटी पर शंकर और पार्वती विराजमान थे, तो पार्वती जी ने बड़ी भक्ति से शंकर जी को प्रणाम किया और भक्ति–साधना के हेतु उनसे प्रश्न किया।

ग्रंथकर्ता ऋषि का आशय है कि 'गुरु–गीता' का ज्ञान स्वयं भगवान् शंकर ने पार्वती को दिया था। वही ज्ञान सूत जी ने ऋषियों को दिया।

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

श्री पार्वती उवाच :–

ॐ नमो देव - देवेश परात्-पर जगद्गुरो।
सदाशिव महादेव गुरु-दीक्षां प्रदेहि मे ।।५।।

केन मार्गेण भो स्वामिन् देही ब्रह्म-मयो भवेत् ?
तत् कृपां कुरु मे स्वामिन् नमामि चरणौ तव।। ।।६।।

पार्वती जी ने कहा :– 'हे स्वामी, आप देवों के देव, सारे संसार के गुरु हैं। सारी मंत्रविद्याएं आप से ही निकली हैं। आप परम तत्व के भी परम तत्व हैं। अर्थात् आप से आगे और कोई पदार्थ नहीं है। आप ही सभी पदार्थों के मूल हैं। आप सदा अपने कल्याणकारी रूप में रहते हैं और जगत का कल्याण करते हैं। आप सब से महान देव हैं। आपको मेरा प्रणाम हो। आप कृपया मुझे गुरु–दीक्षा दीजिए।' तांत्रिक क्रम से गुरु शिष्य को दीक्षा देते हैं। अच्छे मुहूर्त में एक यज्ञ रचाया जाता है। मंत्रों द्वारा शिष्य का पूरा कायाकल्प किया जाता है। समझा जाता है कि शिष्य ने पहले शरीर को छोड़ कर नया रूप धारण किया है। यही दीक्षा है। पार्वती जी आगे बोलीं– 'हे स्वामी, किस रास्ते पर चलने से शरीरधारी मनुष्य अपने को ब्रह्म–स्वरूप पाता है ? मैं बार बार आपके चरणों पर पड़ती हूं। आप कृपा करके मेरे प्रश्नों का उत्तर दें।'

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

श्री शिव उवाच :–

मम रूपासि देवि त्वं त्वत् प्रीत्यर्थं वदाम्यहम्।
लोकोपकारकं प्रश्नं न कोपि कृतवान् पुरा।। ७।।

दुर्लभं त्रिषु लोकेषु तत् शृणुष्व वदाम्यहम्।
गुरुर्ब्रह्म विना नान्यः सत्यं सत्यं वरानने।। ८।।

शिव जी पार्वती जी के प्रश्न के उतर में बोले– 'हे देवि ! तुम मेरा ही अपना रूप हो। तुम में और मुझ में कोई भेद नहीं। तुम्हारी खुशी के लिए मैं अवश्य तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दूंगा। सभी लोग अपने स्वार्थ को ढूढंते हैं, परन्तु तुमने जो प्रश्न किया वह लोगों के हित में है। इस प्रश्न के समाधान से लोगों का उपकार होगा। तुम से पहले आज तक किसी ने लोकोपकार के लिए मुझ से यह प्रश्न नहीं पूछा।'

इस श्लोक में शिव जी ने पार्वती जी को अपना ही रूप बताया। शैव–दर्शन के अनुसार सारे ब्रह्मांड़ में एक ही पदार्थ है, जिसे 'शिव' कहते हैं। शिव में शक्ति है। शिव और शक्ति में कोई अन्तर नहीं। शिव शक्ति के बिना और शक्ति शिव के बिना रह ही नहीं सकते। ये वास्तव में एक ही तत्व के दो रूप है। इसी मूलभूत तत्व को 'शिव–पार्वती' या 'शिव–शक्ति' नाम से पुकारते है। 'शक्तयोस्य जगत् सर्वं, शक्तिमान् तु महेश्वरः'; अर्थात् शक्तिमान् परमेश्वर की शक्तियां जगत् के रूप मे प्रकट होती हैं। वर्तमान भौतिकी (फिज़िक्स) के अनुसार सारा 'ब्रह्मांड' (यूनिवर्स) द्रव्य (मैटर) से बना है। मैटर (द्रव्य) को ऊर्जा (एनर्जी–शक्ति)

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

में परिवर्तित किया जा सकता है। इस प्रकार आधुनिक विज्ञान भी एक ही तत्व की सत्ता मानता है। इसी एक तत्व के दो रूप हैं, जिन के अतिरिक्त ब्रह्मांड में और कुछ नहीं। शिव जी आगे बोले– 'हे पार्वति ! तीन लोकों (पृथ्वी, आकाश, स्वर्ग) में घूम कर जो चीज़ नहीं मिल सकती वही ज्ञान मैं आज तुम को देता हूँ। तुम बड़ी सावधानता से सुनो। गुरु ही ब्रह्म हैं, इस परम–तत्व के बिना और कुछ भी नहीं है। यह बिल्कुल सत्य है।' सद्गुरू हमें बह्म तक पहुंचा सकते हैं। बह्म तक पहुचाने की शक्ति केवल उन्हीं में हो सकती है, जो स्वयं ब्रह्म से ही आए हों। जो बह्म से मिल आए हों वह ब्रह्म बन कर ही आते हैं। इसी अभिप्राय से गुरु को बह्म कहा गया है।

यस्य देवे परा भक्तिः यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः।।६।।

जिस सज्जन को (गुरु ने बताए हुए) अपने इष्ट देव की बड़ी भक्ति हो और इतनी ही भक्ति अपने गुरु की भी हो, उसकी आत्मा महान् बन जाती है। उसी को इस शास्त्र में कही सभी बातें अपने अनुभव में स्वतः आ जाती हैं। या यों कहिए, उसी भक्त को सभी पदार्थ आसानी से मिल जाते हैं।

गुकारस्त्वन्धकारः स्यात् रुकारस्तन्निरोधकः।
अन्धकारनिरोधित्वात् गुरुर् इति अभिधीयते ।।१०।।

गकारेण ह्युकारस्य योगस् तिमिर वाचकः।
अंधकार-विनाशित्वात् गुरुर् इति अभिधीयते।।११।।

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

महादेव जी "गुरु" शब्द की व्याख्या करते है :–

"गुरु" शब्द "गु", "रु" – इन दो अक्षरों के योग से बना है। 'गु' का अर्थ है– अंधकार या अज्ञान। 'रु' का अर्थ है– उस का नाश करना। इस प्रकार अंधकार या अज्ञान का नाश करके प्रकाश या ज्ञान देने वाले को 'गुरु' कहते हैं। 'ग' और 'उ' का जोड़ जीव और अज्ञान का जोड़ है। 'गुरु' जीव के अज्ञान का नाश करते है। अतः उन्हे 'गुरु' कहते है।'

वेद-शास्त्रपुराणानि धर्म-शास्त्रादिकानि च।
मंत्र-यंत्राणि मीमांसा स्मृतीर् उच्चाटनादिकम्।।१२।।

न्याय-विस्तारकल्पादि चेतिहासादिकं तथा।
गुरोः कृपां विना कश्चित् न प्राप्नोति कदाचन।।१३।।

वेद हमारी प्राचीनतम पुस्तकें हैं। इन में हमारे ऋषि–मुनियों का ज्ञान भंडार भरा है। ये हमारी ही नहीं अपितु संसार–भर की सब से प्राचीन पुस्तकें हैं। वेद चार हैं –ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद,अथर्ववेद। 'शास्त्र' का अर्थ है – विज्ञान। हमारे पास गणित, ज्योतिष, वास्तुविधा (सिविल इंजीनियरिंग) आदि विज्ञान की पुस्तकें है। पुराण अठारह हैं। इन के रचयिता भगवान् व्यास हैं। इन में धर्म, नीति, विज्ञान आदि की बातें सरल से सरल ढंग में पेश की गई हैं, ताकि भोली जनता भी इन्हे आसानी से समझ सके। 'मनुस्मृति', 'पराशर–स्मृति' आदि धर्मशास्त्र पर लिखे गए ग्रंथ हैं। इन में धर्म, नीति, व्यवहार का वर्णन है। मंत्र वेदों, पुराणों, तंत्रों में लिखे हैं। विधि–पूर्वक इनका जप करने से सिद्धि प्राप्त

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

होती है। प्रत्येक मंत्र के साथ अपना यंत्र होता है। मन्त्र–जप के साथ साथ यंत्र की विशेष द्रव्यों से पूजा की जाए तो मंत्र शीघ्र फल देते हैं। मीमांसा वेद पर आधारित विवेचनापरक ग्रंथ है। इस के दो भाग हैं – पूर्व मीमांसा और उत्तर मीमांसा। इन में क्रमशः कर्म–कांड तथा ज्ञान की विवेचना है। स्मृतियां ज्ञानी मुनियों के विचारों तथा अनुभव पर आधारित धर्मशास्त्र ग्रंथ हैं ; जैसे 'मनुस्मृति' आदि। 'उच्चाटन' का अर्थ है–उखाडना। तंत्र शास्त्रों में किसी शत्रु का नाश करने के लिए, उसे शारीरिक तौर पर अशक्त बनाने के लिए प्रयोग लिखे हैं। इन को उच्चाटन कहते हैं। न्याय शास्त्र में तर्क के आधार पर सच्चाई जानने का वर्णन है। न्याय हमारे दर्शन–शास्त्रों की पहली सीढ़ी है। कल्प में धार्मिक त्यौहारों के मनाने पर प्रकाश डाला गया है। 'रामायण', 'महाभारत' आदि हमारे इतिहास हैं। इन सब विषयों का ज्ञान गुरु – कृपा के बिना प्राप्त नहीं हो सकता।

यद् अंघ्रि-कमल-द्वन्द्वं द्वन्द्व-ताप निवारकम्।
तारकं भव-सिन्धोश्च श्रीगुरुं प्रणमाम्यहम्।।१४।।

इस संसार में पाप–पुण्य, दुःख–सुख, गर्मी–सर्दी आदि परस्पर विरोधी तत्वों के जोड़े हैं, जिन से हमे बडा कष्ट प्राप्त होता है। संसार में आद्यात्मिक, आदिदैविक, आदिभौतिक–ये तीन प्रकार के कष्ट है। इन्हे 'ताप' कहते है। अपनी अन्दर की कुढ़न, विरोधी विचारों के संघर्ष से जो दुःख पैदा होता है, उसे आध्यात्मिक कष्ट कहते हैं। देवी, देवता, भूत, प्रेत के कारण पैदा होने वाला दुःख आधिदैविक कहलाता है। किसी दुर्घटना से प्राप्त दुःख आधिभौतिक कहलाता है। इन तीनों दुःखों तथा पाप–पुण्य

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

आदि जोड़ों से प्राप्त कष्टों का निवारण श्री सद्गुरु के चरणकमलों की दया से प्राप्त होता है। संसार–रूपी समुद्र को पार करने के लिए सद्गुरु की सहायता आवश्यक है। सद्गुरु इस संसार में सभी प्रकार के कष्टों से बचाते हैं, और अन्त में संसार–सागर के पार लेकर मुक्ति प्राप्त करने में सहायक बनते हैं। सद्गुरु को मैं नमस्कार करता हूँ।

वेद-शास्त्र-पुराणानि जानाति कृपया गुरोः।
अतो लोके गुरुः साक्षात् वर्तते वेद-तत्ववित् ।।१५।।

दुनिया में सच्चे गुरु वही हैं जो वेदों के मर्म को जानते हैं। स्वयं परमेश्वर ज्ञान के भंडार हैं। ऋषियों मुनियों की साधना एवं गहरे चिन्तन से वेद हम तक पहुँचे हैं। वेद सभी प्रकार के ज्ञान की खान हैं। वेदो में सभी प्रकार के ज्ञान सूक्ष्म रूप में निहित हैं। अन्य शास्त्र पुराण आदि इसी ज्ञान का विस्तार से वर्णन करते हैं। अतः स्पष्ट है कि वेदों में निहित सत्यों को पूरी तरह जानने वाले ही सच्चे गुरु हैं। अन्य शास्त्रों का ज्ञान उन के लिए बहुत आसान बात है। शिष्य पर गुरु की पूरी कृपा हो तो वह पहले वेदों का ज्ञान प्राप्त करता है, और अन्य शास्त्रों पुराणों का ज्ञान उसके लिए बहुत सुलभ बन जाता है।

शैव-शाक्तागमा-दीनी तथान्ये बहवो मताः।
अपभ्रंशः समस्तानां जीवानां भ्रान्त-चेतसाम् ।।१६।।

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

यज्ञो व्रतं तपो दानं जपस् तीर्थ तथैव च ।
गुरोस् तत्वं अविज्ञाय समग्रं निष्फलं भवेत् ।।१७।।

गुरोः ज्ञानात्मनो नान्यत् तत्वं सत्यं न संशयः ।
तत् लाभार्थं प्रयत्नस् तु कर्तव्यः सु-मनीषिभिः।।१८।।

जीव अज्ञान के कारण इस संसार में भटकते हैं। अज्ञान के कारण ही हम वस्तुओं के बारे में सच्चा निश्चय नहीं कर पाते–हम भ्रम में पड़े रहते हैं। जब तक हम भ्रम में पड़े हैं तब तक दर्शन–शास्त्रों के पढ़ने से भी हमें कुछ लाभ नहीं। हम इन शास्त्रों में निहित रहस्य बातों को समझ नहीं पाएंगे–असलियत कुछ होगी ; हम और ही कुछ समझेगें। परम–शिव का प्रतिपादन करने वाले शास्त्र 'शैव' कहलाते हैं। जैसे 'ईश्वर प्रतिभिज्ञा' आदि। शक्ति का प्रतिपाधन करने वाले शास्त्र 'शाक्त' कहलाते हैं–जैसे 'दुर्गा–सप्तशती' आदि। ये शास्त्र प्राचीन ऋषि–मुनियो से हम तक परंपरा से आए हैं। अतः ये आगम शास्त्र कहलाते है। अन्य भी बहुत सारे विभिन्न मतों का प्रतिपादन करने वाले शास्त्र हैं। ये सभी अज्ञान में पड़े जीवों को भ्रम में ही डालते हैं–इन से उनको वास्तविकता का पता नहीं चलता। जब तक हम ज्ञानी गुरु से सचाई नहीं जानेंगे तब तक यज्ञ करना, व्रत–उपवास करना, तपस्या करना, दान देना, मंत्र–जप करना, तीर्थ यात्रा करना–यह सब निष्फल हैं। सच्चे गुरु वही हैं जिन्होने स्वयं ज्ञान प्राप्त किया हो। ज्ञानी और ज्ञान में कोई अंतर नहीं ; जैसे शक्ति और शक्तिमान् में अन्तर नहीं रहता।

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

ज्ञानी गुरु से बढ़कर और कोई भी वस्तु नहीं। इस बात में कोई भी संदेह नहीं। इस कारण बुद्धिमान लोगों को सच्चे गुरु को पाने के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

देवि ! बह्म भवेत् देही त्वत् कृपार्थं वदाम्यहम्।
सर्व-पाप-विशुद्धात्मा श्री गुरोः पाद-सेवानत् ।।१६।।

काले तीर्थावगाहस्य संप्राप्नोति फलं नरः ।
गुरोः पादोदकं पीत्वा शेषं शिरसि धारयेत् ।।२०।।

शिव जी पार्वती जी से कहते हैं–हे देवि! मैं तुम पर कृपा करके हितकर वचन कहता हूं कि श्री गुरु के चरणों की सेवा करने से किसी भी मनुष्य के पाप छूट जाते हैं। वह शुद्ध बन जाता है। और ज्ञान प्राप्त करके ब्रह्म में लीन हो जाता है। मनुष्य को पर्वकाल पर तीर्थ पर जाना आवश्यक नहीं। वह अपने गुरु का थोडा सा चरणामृत पीकर, शेष बचा जल सिर पर डाल दे, तो उसे तीर्थ में नहाने का फल मिल जाता है।

शोषणं पाप-पंङ्क-स्य दीपनं ज्ञान-चेतसाम्।
गुरोः पादोदकं पेयं संसारार्णव-तारणम् ।।२१।।

अज्ञान-मूल-हरणं जन्म-कर्म-निवारणम् ।
ज्ञान-वैराग्य-सिद्धयर्थं गुरोः पादोदकं पिवेत् ।।२२।।

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

गुरोः पादोदक-पानं गुरोर् उच्छिष्ट-भोजनम् ।
गुरोः मूर्तेः सदा ध्यानं गुरोःस्तोत्रं सदा जपेत् ।।२३।।

पाप कीचड़ की तरह हमें कलंकित करते हैं। कीचड़ सूख जाए तो कीचड़ से छुटकारा मिलता है। पाप रूपी कीचड़ को सुखाने के लिए गुरु के चरण–कमलों का अमृत पीना चाहिए। इस चरणामृत से मन में ज्ञान का प्रकाश प्रदीप्त हो जाता है। संसार–रूपी समुद्र के पार जाने के लिए भी यही चरणामृत काम देता है। जीव अज्ञान के कारण कर्मों के बंधन में फंस जाता है। कर्मों के भुगतान के लिए ही बार बार जन्म लेना पड़ता है। और इस आवागमन से बहुत दुःख प्राप्त हो जाता है। इस तरह अज्ञान के कारण कर्मों का बन्धन है, और कर्मों के बंधन के कारण सांसारिक दुःख। गुरु का चरणामृत अज्ञान की जड़ें ही नष्ट करता है। अज्ञान न हो तो कर्मों का बंधन नहीं। कर्मबंधन न हो तो आवागमन नहीं। आवागमन न होने से सांसारिक दुःखों से सदा के लिए मुक्ति मिलती है। इस कारण गुरु का चरणामृत पीना चाहिए ताकि अज्ञान का नाश होने से ज्ञान का प्रकाश मिले, और अज्ञान के कारण जिन सांसारिक विषयों का हमें मोह हो, उनके प्रति वैराग्य स्वतः– सिद्ध प्राप्त हो। साधक को चाहिए कि गुरु का चरणामृत सदा पिए, गुरु के खाने से बचा अन्न खाए, गुरु की आकृति का सदा ध्यान करे, और सदा गुरुस्तुति अर्थात् "गुरुगीता" का जप करे।

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

काशी-क्षेत्रे निवासश्च जाह्नवी चरणोदकम् ।
गुरुर् विश्वेश्वरः सक्षात् तारकः ब्रह्मवाचकः ।।२४।।

गुरोः क्षेत्रे निवासश्च गुरोः पादाङ्कि-ता धरा।
तीर्थ-राजः प्रयागोसौ गुरु-मूर्त्यै नमो नमः।।२५।।

गुरोर् मूर्तिं स्मरेत् नित्यं गुरोर् नाम सदा जपेत्।
गरोर् आज्ञां प्रकुर्वीत गुरोर् मंत्रं विभावयेत्।।२६।।

ब्रह्म का ज्ञान देने वाले गुरु हमें संसार–सागर को पार करा सकते हैं। वह काशी में स्थित विश्वनाथ हैं। जहां गुरु रहते हों वह स्थान काशी की तरह परम–पवित्र है। गुरु का चरणामृत गंगा–जल की तरह पवित्र है। गुरु के चरणों से अंकित भूमि तीर्थराज प्रयाग की तरह परम–पवित्र है। गुरु–भक्त के लिए निवास करने की वही जगह है। महामहिम गुरु को बार बार नमस्कार हो। शिष्य सदा गुरु का ध्यान करते हुए गुरु के नाम का जप करे ; गुरु की आज्ञा का पालन करे। गुरु ने जिस मंत्र का उपदेश दिया हो, उस मंत्र का मनन करता रहे।

गुरोर् वक्त्रे स्थितं ब्रह्म प्राप्यते तत् प्रसादतः।
गुरोर् मूर्तेः सदा ध्यानं नारी पतिव्रता यथा।।२७।।

स्वाश्रमं च स्वजातिं च स्वकीर्तिं पुष्टि-वर्धनं।
अन्यत् सर्वं परित्यज्य गुरु-रत्नं विभावयेत्।।२८।।

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

गुरुं चिन्तयतां पुँसां सुलभं परमं सुखं।
तस्मात् सर्व-प्रयत्नेन गुरोर् आराधनं कुरु।।२६।।

गुरु शिष्य पर प्रसन्न हों तो शिष्य को गुरु के मुख से ब्रह्मज्ञान मिल सकता है। शिष्य को चाहिए कि सदा गुरु का चिन्तन उसी प्रकार करे जैसे पतिव्रता नारी अपने पति का ध्यान करती है। गुरु एक अनमोल रत्न हैं। इस रत्न को पाने के लिए अपना आश्रम (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, आदि), अपनी जाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय, आदि) सुख और आनन्द देने वाली अपनी कीर्ति और अन्य चीज़ें भी छोड़नी पड़ें, तो भी कम है। गुरु का चिन्तन करने से परमसुख आसानी से मिल सकता है। हे जिज्ञासु शिष्य! इस कारण प्रति संभव प्रयत्न करके गुरु की आराधना करो।

गुरोर् वक्त्रे स्थिता विद्या गुरु-भक्त्या च लभ्यते।
त्रैलोक्ये स्फुट्-वक्तारो देवाद्याः सुर-पन्नगाः।।३०।।

भू, भुवः, स्वः– इन तीनों लोकों में रहने वाले देव, नाग आदि जातियां साफ साफ यही बताती हैं कि गुरु–भक्ति विद्या प्राप्त करने का एक मात्र उपाय है। गुरु–भक्त शिष्य अपने गुरु की भक्तिपूर्वक सेवा करने से उन को प्रसन्न करता है, और गुरु स्वयं उसे अपनी सारी विद्या देते हैं। अतः गुरु–भक्ति विद्या प्राप्त करने का साधन है।

गुकारस्त्वन्धकारोस्ति रुकारस् तद् विनाशकः।
अज्ञान-ग्रासकं ब्रह्म गुरुर् एव न संशयः।।३१।।

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

गुकारः प्रथमो वर्णो मायादि गुण-भासकः।
रुकारो द्वितीयो ब्रह्म माया-भ्रान्ति-विमोचकः।।३२।।

एवं गुरुपदं श्रेष्ठं देवानां अपि दुर्लभम् ।
हाहा-हूहू-गणैश्चैव गन्धर्वाद्यैश्च पूज्यते।।३३।।

महादेव जी 'गुरु' शब्द की व्याख्या करते हुए बताते हैं कि 'गु' का अर्थ है–अंधकार, अज्ञान। 'रु' का अर्थ है– उसका विनाश करने वाला। 'गु', 'रु' के जोड़ से 'गुरु' बनता है और अपने शिष्य के अज्ञान, अन्धकार को दूर करने वाले को "गुरु" कहते हैं। प्रकाश–स्वरूप ब्रह्म हमारे अज्ञान का ग्रास करते हैं। इस प्रकार ज्ञान–प्रकाश देकर अज्ञान को दूर करने वाले गुरु ही ब्रह्म हैं। इस बात में कोई संशय नही। अन्य प्रकार से 'गुरु' शब्द की व्याख्या यों है – 'गुरु' शब्द का पहला वर्ण 'गु' माया और माया के तीनो गुणों सत्व, रजः, तम ; का वाचक है। माया त्रिगुणात्मिका है। भगवान कृष्ण ने कहा है– "दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया"–मेरी माया (तीन) गुणों की बनी है। इस से छुटकारा पाना आसान नहीं है। माया हमें भ्रम में डालती है, जिससे हम अज्ञान मे रहते हैं। 'गुरु' शब्द का दूसरा वर्ण 'रु' छुटकारा देने वाले का वाचक है। इस प्रकार माया और तीनों गुणों से छुटकारा दिलाने वाले का नाम 'गुरु' है। 'गुरु' भ्रान्ति दूर करके ज्ञान का प्रकाश देते हैं। अतः गुरु और ब्रह्म में कोई अन्तर नहीं। गुरु का दर्जा बहुत ही श्रेष्ठ है। देवता भी इसे असानी से पा नहीं सकते। देवताओं के गायकों को गन्धर्व कहते हैं। गंधर्वो मे 'हाहा' और 'हू हू' मुख्य हैं। ये गायक भी गुरु–पद को पूजते हैं।

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

ध्रुवं तेषां च सर्वेषां नास्ति तत्वं गुरोः परम् ।
आसनं शयनं वस्त्रं वाहनं भूषणादिकम् ।।३४।।

साधकेन प्रदातव्यं गुरोः संतोष-कारणम्।
गुरोर् आराधनं कार्यं यत् प्रियं तत् निवेदयेत् ।।३५।।

सभी देवताओं के लिए गुरु से बढ़कर कोई चीज़ नहीं। अतः गुरु को खुश करने के लिए आसन, बिस्तरा, कपड़े, सवारी, भूषण– सब कुछ अर्पण करना चाहिए। गुरु को जो चीज़ प्यारी हो वही पेश करनी चाहिए।

आत्मदारादिकं चैव सद्गुरुभ्यो निवेदयेत्।।
कृमि-कीट-भस्म-विष्टा-दुर्गन्ध-मल-मूत्रकम् ।।३६।।
श्लेष्मा-रक्त-वसा चर्म तत् क्षेत्रं च वरानने।
देहाभिमानिनो मूढाः पतन्ति नरकार्णवे ।।।३७।।

शरीरम् अर्थं सर्वस्वं सद्-गुरुभ्यो निवेदयेत्।
येनोद्धृतम् इदं सर्व तस्मै श्री गुरवे नमः।।३८।।

शिवजी पार्वतीजी से कहते हैं– हे सुमुखि! साधक भक्त अपने सद्गुरु को अपना आप, अपना परिवार समर्पित करके उनकी सच्ची आराधना करें। यह शरीर कीड़ों, मकोड़ों, भस्म, बदबूदार मल–मूत्र, कफ, खून, वसा और चमड़ी से बना है। मूर्ख लोग इसी पर अभिमान करते हैं, और इसी से नरक रूपी समुद्र में

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

डूबते है। ऐसे निस्सार, तुच्छ शरीर को गुरु के अर्पण किया जाए तो अच्छा है। इस से शरीर का ही महत्व बढ़ता है। धन, दौलत सब कुछ सद्गुरु के अर्पण करना चाहिए ताकि जीव अपने सही रूप को पहचान सके। उन गुरु को बार बार प्रणाम हो जिनकी दया से अनित्य,नश्वर,सारहीन मानव–शरीर का उद्धार होता है।

गुरुर् ब्रह्मा गुरुर् विष्णुः गुरुः देवो महेश्वरः।
गुरुर् एव परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।।३६।।

परंब्रह्म विश्वोत्तीर्ण (संसार से ऊपर) और विश्वमय हैं। ब्रह्मा बनकर वह संसार की रचना करते हैं। विष्णु बन कर वह संसार की रक्षा करते हैं और महेश्वर बनकर संसार का संहार करते हैं। गुरु परंब्रह्म हैं। अतः वही ब्रह्मा, वही विष्णु, तथा वही शिव हैं। गुरु को नमस्कार हो।

गुरुः माता पिता चैव गुरुर् देवो हि बान्धवः।
गुरोर् देवात् परं नान्यत् तस्मै श्री गुरवे नमः।।४०।।

माता, पिता, हमदर्द, बान्धव हर प्रकार से हमारी भलाई चाहते हैं। गुरु हमारे मां, बाप, बान्धव, सब कुछ हैं। गुरुदेव से बढ़कर और कुछ भी नहीं हैं। गुरुदेव को नमस्कार हो। भक्त जब अपने उपास्य की भक्ति में आगे बढ़ता है तो उसे अपने उपास्य के अतिरिक्त और कुछ भी नज़र नहीं आता। वही उसे देवता, बन्धु, सखा सब कुछ नज़र आते हैं।

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

हेतवे जगतां एव संसारार्णव-तारणे।
प्रभवे सर्वविद्यानां शंभवे गुरवे नमः।।४१।।

गुरु जगत् की जीवात्माओं को संसार–सागर के पार उतारने में हेतु बन जाते हैं। गुरु समस्त विद्याओं के उत्पति–स्थान हैं, अर्थात् सभी विद्याएँ गुरु से आती हैं। गुरु कल्याण–कारी हैं अथवा गुरु साक्षात् शिव स्वरूप हैं। गुरु को नमस्कार हो। शंकर भगवान से सभी अध्यात्म–विद्याएं आती हैं, सभी मत्रों की सिद्वि उन्हीं के अधीन है। अतः अध्यात्म–विद्याओं के शिक्षक होने से गुरु शिव–स्वरूप हैं। शिक्षा–शास्त्री, दार्शनिक तथा मनोवैज्ञानिक मानते हैं कि हमारे अंदर सभी विद्याओं का ज्ञान मौजूद है। उसे केवल प्रस्फुटित करना है। जिसका जितना मानसिक विकास हो, वह उतना ही विद्याओं को समझता है। आध्यात्मिक विकास का मानसिक विकास से सीधा सम्बन्ध है। आध्यात्मिक विकास कराने वाले गुरु सभी विद्याओं के दाता हैं। गुरु के बताए अध्यात्म–मार्ग पर चलते हुए हम मुक्ति–पथ पर आगे बढ़ते हैं। अतः गुरु ही संसार–सागर को पार कराने में हेतु हैं।

अज्ञान-तिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जन-शलाकया।
चक्षुर् उन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः।।४२।।

गुरु ने अज्ञान के अन्धकार से अंधी बनी हुई शिष्य की आंखें ज्ञानरूपी अंजन की तीली लगाकर खोल दीं। उन गुरु को नमस्कार हो।

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

कहावत है कि रसायनज्ञों के पास ऐसा अंजन होता है जिसकी तीली आँखों में लगाने से अंधी आंखों में रोशनी आ जाती है। हम सब कुछ देखते हुए भी, अज्ञान के कारण, वास्तविकता को देख नहीं पाते। अतः हम अंधें ही हैं। गुरु हमें ज्ञान देते हैं, जिस से हमारी अन्दर की आंखे खुलती हैं और हम ज्ञान के प्रकाश में आ जाते हैं।

अखण्ड-मण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत् पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः।।४३।।

सारे ब्रह्माण्ड (यूनिवर्स) में जड़–चेतन व्याप्त हैं। यह ब्रह्माण्ड अनन्त है। इस ब्रह्माण्ड में सर्वव्यापक परमेश्वर व्याप्त हैं। जो गुरु परमेश्वर का साक्षात्कार कराते हैं, उन्हे मेरा नमस्कार हो।

आधुनिक भौतिक विज्ञान समस्त ब्रह्माण्ड में द्रव्य (मैटर) या ऊर्जा (एनर्जी) नाम की एक ही वस्तु की व्याप्ति मानता है। विज्ञान में यह वस्तु जड़ है और इस जड़ वस्तु पर चेतन मनुष्य का थोड़ा थोड़ा अधिकार हो सकता है। यह वस्तु कहां से आती है? इसका असली उद्भव कहां से है ? इन प्रश्नों का उत्तर विज्ञान में नही हैं। विज्ञान से आगे हमारे शास्त्र गुरु हैं, और व्यापक तत्व का पद (मूल) गुरु दिखा सकते हैं। इस सारी रचना के मूल–तत्व चेतन परमेश्वर हैं, और वे अपनी इच्छा से अपने अन्दर स्थित पदार्थों को प्रकट करते हैं। उन्हें किसी उपादान (जैसे घड़ा बनाने के लिए मिट्टी) की कोई आवश्यकता नहीं। शैव–शास्त्र में लिखा है– 'चित् आत्मैव हि देवोन्तः स्थितं इच्छावशात् बहिः। योगीव निर् उपादानं अर्थ–जातं प्रकाशयेत्।'

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

स पिता स च मे माता स बन्धुः स च देवता।
संसार-प्रतिबोधार्थं तस्मै श्री गुरवे नमः।।४४।।

आध्यात्मिक ढ़ंग से एक ब्रह्म स्वयं विश्व बन जाते हैं। कौन किसका पिता है ? और कौन किसका पुत्र ? परन्तु सांसारिक ढ़गं से पिता–पुत्र आदि संबन्ध हैं। सांसारिक ढंग से भक्त कहता है कि सांसारिक जीव यही जानें कि गुरु मेरे पिता हैं, गुरु मेरी माता। वही मेरे बन्धु, वही मेरे देवता– वह सब कुछ हैं। उन्हीं को मेरा नमस्कार।

यत् सत्येन जगत् सत्यं यत् प्रकाशेन भाति तत्।
यद् आनन्देन वोदेति तस्मै श्री गुरवे नमः।।४५।।

इस श्लोक तथा अगले छः श्लोकों में गुरु को ब्रह्म–स्वरूप मानकर उन की स्तुति की गई है। जिस ब्रह्म–स्वरूप गुरु के सत्य होने के कारण यह जगत् (जो ब्रह्म का ही रूपांतर है) सत्य है, जिसके प्रकाश से जगत प्रकाशमान है, (उपनिषद् में लिखा है– "तमवे भान्तं अनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति") वह ब्रह्म प्रकाशमान है। उसी के पीछे सारा जगत् प्रकाशमान है। उसी के प्राकाश से सब प्रकाशमान है। जिनके आनन्द से जगत् का उदय (आविर्भाव) होता है उन गुरु को नमस्कार हो।

इस श्लोक में सृष्टि का प्रयोजन भी बताया गया है। परमेश्वर अपने स्वातंत्र्य से जगत् का आविर्भाव तथा तिरोभाव करते हैं। यह उन की क्रीड़ा है।

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

महामहिम श्री उत्पलदेव शैवाचार्य ने कहा है–

स्फारयस्यखिलं आत्मना स्फुरन्
विश्वमामृशसि रूपं आमृशन्।
यत् स्वयं निज–रसेन घूर्णसे
तत् समुल्लसति भाव–मंडलम्।।

हे परम शिव ! आप के विकास से सारा विश्व विकसित होता है। जब आप इस विश्व का निरीक्षण करते हैं तो अपने ही रूप का निरीक्षण करते हैं। आप की क्रीडा से यह सारे पदार्थ उल्लसित हो जाते हैं। आप अपने स्वातंत्र्य से ही अपने अन्दर स्थित जगत् का आविर्भाव और तिरोभाव करते हैं।

यस्मिन् स्थितं इदं सर्वं यद् भानाद् भाति चैव यत्।
यत् प्रियात् प्रिय-पुत्रादि तस्मै श्री गुरवे नमः।।४६।।

जिन परमेश्वर में यह सारा विश्व स्थित है, जिन परमेश्वर के प्रकाश से यह सब कुछ प्रकाशित है और जिन के प्यारे होने से पुत्रादि हमको प्यारे लगते हैं, उन श्री गुरु को मेरा नमस्कार हो। वास्तव में परमेश्वर के सिवा दूसरी वस्तु कोई है ही नहीं। वे स्वयं आधार (जिस में या जिस पर कोई चीज़ टिकी हो) और आधेय (टिकी हुई चीज़) बनते हैं। वह स्वयं अपने ही प्रकाश से प्रकाशमान हैं और जगत उन्हीं का रूप है। परमेश्वर प्यारे हैं, इसी लिए पुत्रादि सम्बन्धी प्यारे लगते हैं। गुरु उन्हीं परमेश्वर के स्वरूप हैं।

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

येन चिन्तयते देही चित्तं चेतयते यतः।
जाग्रत् स्वप्न सुषुप्त्यादि तस्मै श्री गुरवे नमः।।४७।।

जिन ब्रह्म–स्वरूप गुरु के कारण जीवधारी सोच सकते हैं।जिन के कारण चित्त जाग्रत (होशियारी), स्वप्न तथा सुषुप्ति (प्रगाढ़ निद्रा) का अनुभव करता है, उन को मेरा नमस्कार हो।

यहाँ आत्मा, परमात्मा और गुरु में कोई अन्तर नहीं। आत्मा ब्रह्म का अंश होने से चेतन है। चेतन होने के कारण ही जीव जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति–इन तीनों अवस्थाओं को अनुभव करता है। जाग्रत और स्वप्न में अनुभव करता ही है; सुषुप्ति (प्रगाढ़ निद्रा) में भी अनुभव करता है – "मैं गहरी नींद में सोया था, मुझे कुछ भी पता नहीं" – ऐसा सुषुप्ति से जाग्रत होने के बाद कहता है।

यस्य ज्ञानं इदं विश्वं न दृश्यं भिन्न-भावतः।
सदैक-रूप-रूपाय तस्मै श्री गुरवे नमः।।४८।।

गुरु हमें यह ज्ञान देते हैं कि यह सारा विश्व परमेश्वर से भिन्न नहीं मानना चाहिए; परमेश्वर ही विश्वरूप बन कर प्रकाशमान हैं। विश्व में और परमेश्वर में कोई अन्तर नहीं। गुरु परमेश्वर–स्वरूप हैं। उन में कभी कोई अन्तर नहीं आता। ऐसे ब्रह्म–स्वरूप गुरु को नमस्कार हो।

शास्त्र में लिखा है – "हरिरेव जगत्, जगदेव हरि ..... हरितो जगतो नहि भिन्नमणुः। इति यस्य मतिः परमार्थ – गतिः। स नरः भवसागरं उत्तरति"; अर्थात् हरि ही जगत हैं और जगत ही हरि हैं। जगत् का अणु (एटम्) भी हरि से भिन्न नहीं। जिस मनुष्य

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

के ऐसे विचार हैं, वही परमार्थ की तरफ जाता है और संसार–समुद्र को पार करके ब्रह्म में लीन हो जाता है।

यस्य मन्त्रं तस्य मन्त्रं मन्त्रं यस्य महात्मनः।
अनन्य-भाव-भावाय तस्मै श्री गुरवे नमः।।४६।।

जिस ने जिस मंत्र का भजन करके साधना की है वह मंत्र उसके लिए सिद्ध मंत्र बन जाता है और वही उस मंत्र का उपदेश दूसरों को दे सकता है। संसार के सभी जीव आत्माएं हैं, परन्तु ब्रह्म–निष्ट गुरु एक महान आत्मा हैं। उन्हीं का दिया हुआ मंत्र साधना से शीघ्र फल देता है। मंत्र–साधना के उच्च स्तर में मंत्र, मंत्र–देवता, साधक – तीनों एक हो जाते हैं। गुरु, मंत्र और देवता से एकाकार हैं। ऐसे गुरु को नमस्कार हो।

इस श्लोक से साफ स्पष्ट है कि मंत्र का उपदेश वही कर सकता है जिसने स्वयं मंत्र को सिद्ध किया हो। गुरु से मंत्र का उपदेश लेकर जप किया जाए तो सिद्धि शीघ्र मिल जाती है।

यस्य कारण-रूपस्य कार्यरूपेण भाति यः।
कार्य-कारणतां एति तस्मै श्री गुरवे नमः।।५०।।

जिस एक वस्तु की अन्य चीज़ें बनती हैं, वह उन सभी का उपादानकारण है। जैसे मिट्टी घड़े, नांद, प्यालों आदि का उपादानकारण है। बनी हुई चीज़ें कार्य कहलाती हैं। जैसे घड़ा, नांद, प्याला आदि मिट्टी के कार्य है। जो चीजों के बनने में सहायता देते हैं उन्हें निमित्त कारण कहते हैं। जैसे कुम्हार, चाक,

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

दंड आदि। इस सारे विश्व के कारण ब्रह्म हैं। वे स्वयं कार्यरूप जगत में प्रकट होते हैं। वे स्वयं कार्य भी हैं और कारण भी। श्री गुरु ब्रह्म से अभिन्न हैं, अतः गुरु ही जगत्–कारण हैं। जगत् भी वह स्वयं ही हैं। उनको नमस्कार हो।

नाना-रूपं इदं विश्वं न केनापि अस्ति भिन्नता।
कार्य-कारणतां एति तस्मै श्री गुरवे नमः।।५१।।

इस जगत् में नाना प्रकार की वस्तुएं हैं। कई कारण हैं, कई कार्य हैं; लेकिन ये एक दूसरे से भिन्न नहीं। वास्तव में एक ही वस्तु विश्व के समस्त कारणों और कार्यों का रूप धारण करती है। यह मूलभूत वस्तु ब्रह्म – स्वरूप गुरु ही हैं। ऐसे महान गुरु को मेरा नमस्कार हो।

शिवः क्रुद्धो गुरुस् त्राता गुरुः क्रुद्धो शिवो न हि।
तस्मात् सर्व - प्रयत्नेन श्री गुरुं शरणं व्रजेत्।।५२।।

दुर्भाग्य से यदि शिव हम पर नाराज़ होकर क्रोध करें, तो हमें गुरु शिव के क्रोध से बचा सकते हैं, परन्तु यदि गुरु हम पर क्रोध करें तो शिव भी हमें बचा नहीं सकते। इस कारण प्रति संभव प्रयत्न करके गुरु की शरण में जाना चाहिए।

कबीर दास भी कहते हैं :– "हरि रूठे गुरु ठौर है; गुरु रूठे नहिं ठौर।"

वन्दे गुरु-पद-द्वन्द्वं वाङ्-मनोतीत गोचरम्।
श्वेत-रक्त-प्रभा-युक्तं शिव-योगात्मकं परम्।।५३।।

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

गुरु–चरणों का जोड़ा, अर्थात् श्री गुरु देव , शिव से अभिन्न हैं। वे महान हैं। श्री गुरु वाणी और मन से परे हैं। न वे वाणी के विषय बन सकते हैं और न मन के। शिव स्वरूप होने के कारण गुरु को सांसारिक जीव जान नहीं पाते। अतः वाणी द्वारा उनका वर्णन संभव नहीं। हमारा मन भी उनको समझ नहीं पाता। गुरु–चरण सफेद और लाल रंग के मिश्रण से बने चमकीले रंग से शोभायमान हैं। गुरु सांसारिक ढंग से सत्व गुण और रजोगुण से युक्त हैं। परन्तु शिव–स्वरूप होने के कारण वे गुणों से परे हैं। गुरु में आध्यात्मिक ज्ञान है। अतः वे सत्व–गुण–युक्त हैं। संसार में रहकर वे कार्य करते हैं; अतः उनमें रजोगुण है, परन्तु शिव–स्वरूप होने के कारण वे गुणों से परे हैं।

गुकारं तु गुणातीतं रुकारं रूप-वर्जितम्।
गुणातीत-स्वरूपं च यो दद्यात् स गुरुः स्मृतः।।५४।।

"गुरु" शब्द "गु", "रु" इन दो अक्षरों के योग से बना है। "गु" का अर्थ है – सत्व, रज, तमः– इन तीन गुणों से परे। "रु" का अर्थ है – रूप रंग के बिना, इस तरह 'गुरु' शब्द त्रिगुणातीत, निराकार ब्रह्म का वाचक है। जो शिष्य को त्रिगुणातीत, निराकार ब्रह्म ही बनाएं वे ही गुरु हैं।

भगवान कृष्ण ने गीता जी में कहा है – "त्रिगुणात्मक माया को पार करना आसान नहीं। जो मेरी शरण में आकर मुक्त हो जाते हैं, वहीं माया के बंधन से छूटते हैं"। सत्व–गुण प्रकाश है। इस से हम समझ सकते हैं। सूझबूझ और आनन्द सत्वगुण का धर्म है। रजोगुण हमें चंचल तथा कार्यरत बनाता है। तमोगुण

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

अज्ञान एवं आलस्य का कारण है। यह रजोगुण के प्रभाव को कम करने के लिए आवश्यक है।

अत्रि-नेत्रोद्भव-शीतः चतुर्बाहुस् - त्रिलोचनः।
यः चतुर्-वदनो ब्रह्मा श्री गुरुः कथितः प्रिये ।५५।।

महादेव पार्वती जी से कहते हैं कि हे प्रिये ! अत्रि ऋषि की आंख से पैदा होने वाले चन्द्रमा की तरह ठंडक पहुंचाने वाले गुरु ही चार भुजाओं वाले विष्णु हैं। वही तीन आंखों वाले शिव हैं और वही चार मुखों वाले ब्रह्मा हैं। गुरु ब्रह्म–स्वरूप हैं। अतः वही सृष्टि–कर्त्ता ब्रह्मा, पालन–कर्ता विष्णु और संहारकारी रुद्र के रूपों में प्रकट होते हैं। गुरु ही एक तत्व है, जिसके बिना और कुछ है ही नहीं।

अयं मयाञ्जलिः बद्धो दया-सागर वृद्धये।
भवत्-चानुग्रहो भूयात् घोर-संसार-मुक्तये।।५६।।

शिष्य गुरु से कहे – 'हे दया के समुद्र, गुरु महाराज ! मैं आपके सामने हाथ जोड़ कर खड़ा हूँ। आपकी शरण आया हूँ। आपका अनुग्रह मुझ पर हो ताकि इस संसार में मेरी हर तरह से वृद्धि हो ओर इस कठिन संसार से छुटकारा मिले।'

श्री गुरोः परमं रूपं विवेक - चक्षुषोऽग्रतः।
मन्दभाग्याः न पश्यन्ति ह्यन्धाः सूर्योदयं यथा।।५७।।

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

आध्यात्मिक विचार से जिनकी अन्दर की आंखें खुली हों वे सदा अपने महान गुरु को सामने पाते हैं, परन्तु बदनसीब लोग (जिनकी अन्दर की आंखे बन्द हों) गुरु को पा नहीं सकते, जिस तरह अन्धा उगते सूर्य को भी देख नहीं सकता। आशय यह है कि जिस तरह से उगते सूर्य में कोई शक नहीं, उसी तरह गुरु की महानता में भी कोई शक नहीं, परन्तु गुरु को समझने के लिए अन्दर की आंखें चाहियें।

श्रीनाथ-चरण-द्वन्द्वं यस्यां दिशि विराजते।
तस्यां दिशि नमस्कुर्यात् भक्त्या प्रतिदिनं प्रिये।।५८।।

शिवजी कहते हैं – हे प्यारी ! गुरु महाराज जिस दिशा में रहते हैं, प्रतिदिन उस दिशा में भक्तिपूर्वक नमस्कार करना चाहिए।

तस्यां दिशि सतत प्राञ्जलिः मंत्रपुष्पान्
संप्रक्षिपेत् सुखकरान् च द्विरेफयुक्तान्।
जागर्ति यत्र भगवान् गुरु-चक्रवर्ती
विश्वोदय-प्रलय-नाटक-नित्यसाक्षी।।५९।।

परमशिव स्वयं संसार रूप में प्रकट होते हैं और कभी इस संसार को अपने में लीन करते हैं। इन्हीं दो क्रियाओं को क्रमशः सृष्टि और प्रलय कहते हैं। संसार का सृजन और संहार परमशिव का नाटक है। गुरुओं में से श्रेष्ठ हमारे गुरु स्वयं शिव से अभिन्न होने के कारण इस नाटक के साक्षी हैं – इस नाटक को देखते रहते हैं। ऐसे महामहिम गुरु जिस दिशा में रहते हों, हमेशा उस

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

दिशा में नमस्कार करना चाहिए। मंत्र पढ़कर ताज़ा फूलों को (जिन पर अभी भी भौंरे बैठे हों) फेंकना चाहिए। अपने सद्गुरु के पास हम रोज़ जा न सकें, तो भी सदा उनकी दिशा में उनका नाम लेकर फूल डालने चाहिएं, जिससे उनकी पूजा हो।

सात्विकादि गुणैः प्रशस्त-विभवैः, व्याधि-हरैः दुष्करैः,
प्राणायाम-शतैर् महेश्वर-पदं, न प्राप्यते मानवैः।
यत्-कारुण्य-लवेन प्राण-महतो, यत्तः स्वयं तत् क्षणात्,
सेव्यः स परमार्थ-चिन्तन-परो, वेदार्थवित् श्रीगुरुः।।६०।।

सत्वगुण ज्ञान, प्रकाश, शान्ति देने वाला है। सात्विक या अन्य गुणों के धारण करने से, बहुत बड़े वैभव से, व्याधि को हटाने वाले सैंकड़ों मुश्किल प्राणायामों से भी कोई शिव–स्वरूप नहीं बन सकता जब तक न गुरु महाराज की कृपा हो। गुरु महाराज की थोड़ी सी दया से भी मनुष्य शीघ्र प्राणवायु का निरोध करके समाधि को प्राप्त कर सकता है। गुरु महाराज वेदों के सच्चे अर्थ को जानते हैं और परमार्थ का चिन्तन करते हैं। हमें उन्हीं की सेवा करनी चाहिए।

गुरुर् देवो जगत् सर्वं ब्रह्मा-विष्णु-शिवात्मकः।
गुरोः परतरं नास्ति तस्मात् सम्पूजयेत् गुरुम् ।।६१।।

इस सारी सृष्टि और सभी पदार्थों के मूल में एक ही तत्व है, जिसके बिना और कुछ है ही नहीं। वेदान्त इसे ब्रह्म और शैवदर्शन इसे परमशिव कहता हैं। विज्ञान इस तत्व को द्रव्य (मैटर) या ऊर्जा (एनर्जी) मानता है। इस शास्त्र में गुरु ब्रह्म या

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

परमशिव का ही रूप है। अतः गुरु ही सृष्टि करने वाले ब्रह्मा, रक्षा करने वाले विष्णु और जगत को फिर से अपने में लीन करने वाले शिव के रूप में प्रकट होते हैं। सारा जगत गुरुदेव का ही रूप है। गुरु के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। इस कारण गुरु की ही पूजा करनी चाहिए।

सर्व-श्रुति-शिरो-रत्न-विराजित-पदाम्बुजः।
वेदान्ताम्बुज-सूर्याय तस्मै श्री गुरवे नमः।।६२।।

सब वेदों के शिरोमणि आचार्य भी गुरु–देव के चरणों पर नतमस्तक हो जाते हैं। वेदान्त, दर्शन तथा उपनिषदों में निहित आध्यात्मिक ज्ञान रूपी कमल को खिलाने वाले सूर्य गुरु ही हैं। अर्थात गुरु आध्यात्मिक विद्या का विस्तार करते हैं। गुरुदेव को मेरा नमस्कार हो।

यस्मात् परतरं नान्यत् अस्ति किंचित् जगत्त्रये।
मनसा वचसा ध्येयः तस्मै श्री गुरवे नमः ।।६३।।

भू (पृथिवी), भुवः (आकाश) स्वः (स्वर्ग) – इन तीनों लोकों में गुरु से बढ़कर और कुछ भी नहीं है। अतः मनसे गुरु का ही ध्यान करना चाहिए, और वाणी से उन्हीं का बखान करना चाहिए। गुरु को नमस्कार हो।

गुरु-देव-प्रसादेन ब्रह्मा-विष्णु-हरादिषु।
सामर्थ्यं प्राप्यते शिष्यैर् मोक्षस् तत् सेवया ध्रुवम्।।६४।।

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

गुरुदेव की कृपा हो तो शिष्य की पहुँच ब्रह्मा,विष्णु अैर शिव तक हो सकती है। गुरु की सेवा से मोक्ष मिलना तो निश्चित ही है। आशय यह है कि यदि गुरु हम पर मेहरबान हों तो सभी देवता हम पर मेहरबान हो जाते हैं। सच्चे दिल से गुरु की सेवा की जाए, तो गुरु के बताए रास्ते का अनुसरण करने से मुक्ति निश्चित ही है।

ज्ञानी कर्मी तथा योगी गुरुर् ज्ञेयः सुखप्रदः।
त्रिभिः हीनं त्यजेत् दूरे मिथ्या-ज्ञान-प्रदर्शकम्।।६५।।

वही गुरु सच्चे गुरु हैं और शिष्य को सुख पहुंचा सकते हैं, जो स्वयं ज्ञानवान हों और शिष्यों को ज्ञान दे सकते हों। या जो स्वयं सच्चे कर्म–योगी हों, जो अष्टांग योग जानते हों और शिष्य को भी योगाभ्यास करा सकते हों। जिस गुरु में इन तीन बातों में से एक भी नहीं और जो ज्ञानी होने का ढोंग रचता हो, उसे दूर ही छोड़ना चाहिए। वह किसी काम का नहीं होता।

यस्य स्मरण-मात्रेण ज्ञानं उत्पद्यते स्वयम्।
ज्ञान-शेवधि-दात्रे वै तस्मै श्री गुरवे नमः।।६६।।

उन गुरु को नमस्कार हो, जिनको केवल याद करने से ही ज्ञान स्वयं पैदा होता है, जो स्वयं ज्ञान के भंडार हैं और हमें भी ज्ञान दे सकते हैं।

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

देव-किन्नर-गंधर्वाः पितृ-यक्षाश्च चारणाः।
मुनयोपि न जानन्ति गुरुशुश्रूषणाविधिम्।।६७।।

ऋषयो नाग-सिद्धाश्च गुरु-सेवा-पराङ्मुखाः।
महाहंकार संयुक्तास् तपो विद्या बलान्विताः।६८।।

संसार-कुहरावर्ते घटीयंत्रे यथा घटाः।
उपर्यधः भ्रमन्ते ते मुच्यन्ते न भवार्णवात् ।।६६।।

स्वर्ग में रहने वाले देवता लोग, किन्नर (देव जाति), देवताओं के गवैये गंधर्व, पितर, यक्ष तथा चारण (देवताओं के स्तुति करने वाले) भी गुरु की सेवा का तरीका नहीं जानते हैं। अपनी बड़ी तपस्या और विद्या के कारण सामर्थ्यवान् ऋषि, नाग और सिद्ध भी यदि अंहकार के कारण गुरु की सेवा न करें, तो कभी संसार समुद्र से छुटकारा नहीं पाते हैं, अपितु संसार के काले गढ़े में ऊपर से नीचे, नीचे से ऊपर घूमते रहते हैं — ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार रहट में घड़े ऊपर नीचे घूमते रहते हैं।

ध्यानं शृणु महादेवि सर्वानन्द-प्रदायकम्।
सर्वसौख्यकरं चैव भुक्ति-मुक्ति-प्रदायकम् ।।७०।।

शंकर भगवान् पार्वती जी से कहते हैं – हे महादेवि ! सुनो। गुरु का ध्यान करने से सब प्रकार से आनन्द मिलता है। सभी प्रकार के सुख मिलते हैं। गुरु का ध्यान करने से सांसारिक वैभव भी मिलता है और फिर अन्त में मोक्ष मिलता है।

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

स्वदैशिकस्यैव शरीरचिन्तनम्
भवेत् अनन्तस्य शिवस्य चिन्तनम्।
स्वदैशिकस्यैव च नामकीर्तनम्
भवेत् अनन्तस्य शिवस्य कीर्तनम्।।७१।।

अपने गुरुदेव के शरीर का ध्यान करना ही अन्तहीन (हमेशा रहने वाले) शिव का ध्यान बन जाता है। अपने गुरुदेव का नाम – कीर्तन अनन्त शिव का कीर्तन माना जाता है। भाव यह है कि अजर, अमर शिव और गुरुदेव में कोई अन्तर नहीं।

श्रीमत् परं ब्रह्म गुरुं वदामि
श्रीमत् परं ब्रह्म गुरुं भजामि।
श्रीमत् परं ब्रह्म गुरुं स्मरामि
श्रीमत् परं ब्रह्म गुरुं नमामि ।।७२।।

गुरु–भक्त शिष्य कहता है – यदि मैं अपने गुरुदेव की प्रशंसा में कुछ कहता हूँ, तो वह परंब्रह्म की प्रशंसा बनती है। यदि मैं अपने गुरुदेव की सेवा करूँ तो वही ब्रह्म की सेवा है यदि मैं अपने गुरुदेव का स्मरण करूँ तो वही ब्रह्म का स्मरण है। यदि मैं गुरुदेव को नमस्कार करता हूँ, तो वही परंब्रह्म को नमस्कार है।

ब्रह्मानन्दं परम-सुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं
द्वन्द्वातीतं गगन-सदृशं तत् त्वं - अस्यादि-लक्ष्यम्।
एकं नित्यं विमलं अचलं सर्वदा साक्षि-भूतम्
भावातीतं त्रिगुण-रहितं सद्गुरुं तं नमामि।।७३।।

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

सद्गुरु ब्रह्म – स्वरूप होने के कारण आनन्द–स्वरूप हैं, और अपने शिष्य को भी उस अपार आनन्द की ओर लेने वाले हैं। वे ज्ञान–स्वरूप है। इस सारे ब्रह्माण्ड में वही एक आकाश की तरह फैले हुए, नित्य रहने वाले सर्वव्यापक तत्व हैं। उनके सिवा और कुछ नहीं है।सुख, दुःख; पाप, पुण्य आदि द्वन्द्वों से गुरु परे हैं। वेदान्त आदि आद्यात्मिक शास्त्रों में जीव से कहा जाता है "तुम वही (ब्रह्म) हो", आदि। ऐसे वाक्यों में लक्ष्य ब्रह्म–स्वरूप गुरु ही है। ब्रह्म–स्वरूप गुरु अजन्मा, अनादि अनन्त होने से नित्य रहने वाले हैं। जीव संसार में आता है तो आणव, मायीय और कार्म – ये तीन प्रकार के मल उसे मलीन करते हैं, परन्तु गुरु में कोई मल नहीं। गुरु अपने ब्रह्म–स्वरूप से कभी टलते नहीं। वे सृष्टि, स्थिति, प्रलय में विद्यमान रहते हैं और सब कुछ देखते हैं। गुरु संकल्प – विकल्प से रहित हैं। वे सत्व, रजः, तमः – इन तीनों गुणों से भी परे हैं। ऐसे गुरु को मेरा नमस्कार हो।

आनन्दं आनन्द-करं प्रसन्नं
ज्ञान-स्वरूपं निजबोध-युक्तम्।
योगीन्द्रं-ईड्यं भव-रोग-वैद्यं
श्रीसद्गुरुं नित्यं अहं नमामि।।७४।।

मेरे सद्गुरु ने अपने आप को अच्छी तरह जान लिया है। वे ज्ञान–स्वरूप हैं; आनन्द–स्वरूप हैं और अपने शिष्य को भी आनन्द की तरफ लेने वाले हैं। वे सदा प्रसन्न हैं; वे योगियों में श्रेष्ठ हैं। अतः सब उनको प्रणाम करते हैं। वे संसार–रूपी बीमारी के वैद्य हैं। अर्थात् उनकी कृपा से शिष्य का संसार में

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

आना–जाना छूटता है। ऐसे सद्गुरु को मैं नित्य प्रणाम करता हूँ।

हृद्-अंबुजे कर्णिका-मध्यसंस्थे
सिंहासने-संस्थित-दिव्य-मूर्तिम्।
ध्यायेत् गुरुं चन्द्र-कलावतंसं
सत्-चित्-सुखाभीष्ट-वरं ददानम् ।।७५।।

शिवजी महाराज कहते हैं – शिष्य अपने हृदय को कमल समझे और ध्यान करे कि उस कमल की कर्णिका के मध्य में गुरु महाराज का सिंहासन बिछा है। उस पर दिव्य शरीरधारी गुरु जी विराजमान हैं। उनके सिर पर चन्द्रकला सोहती है। वह शिष्य को ऐसा वरदान देते हैं कि शिष्य नित्य परम–सुख का अनुभव करता रहता है।

श्वेताम्बरं श्वेत-विलेप-पुष्पं
मुक्ता-विभूषं मुदितं द्विनेत्रम्।
वामांग-पीठे-स्थित-दिव्य-शक्तिं
मन्द-स्मितं शान्ति-कृपा-निधानम् ।।७६।।

शिष्य के हृदय–कमल पर विराजमान गुरु सफेद कपड़े धारण किए हुए हैं। सफेद अंगराग (चन्दन आदि) मलने से उनका शरीर सफेद फूल की तरह सुन्दर है। उनकी दो आँखें हैं। वे प्रसन्नचित्त हैं और मोतियों की लड़ियाँ उनके बदन पर सोहती हैं। उनके वाम–भाग में दिव्य शक्ति का निवास है। उनके होठों पर मन्द मुस्कान है और वे शान्तिपूर्ण हैं। वे दया के सागर हैं।

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

यस्मिन् सृष्टि-स्थिति-ध्वंस-पिधानानुग्रहात्मकम्।
कृत्यं पंचविधं शश्वद् भासते तं नमाम्यहम्।।७७।।

शैव दर्शन के अनुसार परमशिव सृष्टि (संसार–रूप में प्रकट होना) स्थिति (संसार को वर्तमान रूप में टिकाना) ध्वंस (संसार को अपने में लीन करना) पिधान (जीवों को मोह में डाल कर उन्हें सच्चाई से दूर रखना) तथा अनुग्रह (दया करके जीव को ज्ञान देना) इन पाँच कार्यों में लगातार लगे रहते हैं। सद्गुरु परमशिव से अभिन्न हैं। अतः गुरु ही इन पाँच कार्यों में लगातार लगे रहते हैं। उन गुरुदेव को मेरा नमस्कार हो।

यत्-पाद-रेणुमिर् नित्यं भक्ताः संसार-वारिधेः।
सेतुं बध्नन्ति वै सम्यक् दैशिकं तं उपास्महे ।।७८।।

जैसे समुद्र को पार करना बहुत कठिन है, इसी तरह संसार को पार करना, अर्थात् संसार के आवागमन से छुटकारा पाना कठिन है। अतएव संसार को सागर माना जाता है। इसी संसाररूपी समुद्र का सेतु बांधने के लिए मिट्टी चाहिए। गुरु–भक्त लोग अपने गुरु महाराज के चरणों की धूल से यह हमेशा बांधते हैं। आशय यह है कि प्रत्येक युग में भक्त लोग गुरु की दया से ही भव–सागर को पार कर सके हैं। ऐसे सामर्थ्य रखने वाले गुरु महाराज की हम उपासना करते हैं।

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

प्रातः शिरसि शुक्लेब्जे द्विनेत्रं द्विभुजं गुरुम्।
वराभय-करं शान्तं स्मरेत् तं भाव-पूर्वकम् ।७६।।
नित्यं शुद्धं निराभासं निराकरं निरञ्जनम्।
नित्य-बोधं चिद् आनन्दं गुरुं ब्रह्म नमाम्यहम्।।८०।।

गुरु साक्षात् ब्रह्म हैं। वे भूत, भविष्यत्, वर्तमान– इन तीन कालों में रहते हैं। उनका कोई आकार नहीं। उन पर माया से कोई लेप नहीं चढ़ता। वे विशुद्ध हैं। गुरु ही वास्तविक सत्ता है; वे आभासमात्र नहीं हैं। वे हमेशा अपने ज्ञान–स्वरूप में रहते हैं। वे चैतन्य–स्वरूप और आनन्दमय हैं। इस प्रकार गुरु निर्लेप, निराकार, शुद्ध आनन्द–स्वरूप, सत् और चित् हैं। उनकी वास्तविक सत्ता है। वे आभास (इल्यूजन) नहीं है। इस प्रकार गुरु के वास्तविक सूक्ष्म रूप का चिन्तन असम्भव सा है। अतः महादेव कहते हैं कि शिष्य को चाहिए कि प्रातः अपने मस्तिष्क में स्थित हज़ार पंखुडियों वाले श्वेत कमल पर विराज–मान, दो आंखों वाले, अपने दो हाथों से वरदान एवं अभय–दान देने वाले गुरु का नाम लेकर चिन्तन करे।

मनोविज्ञान का नियम है कि हमें स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाना चाहिए। हमारे ध्यान में वह चीजें आती है जिनको या जिनके अवयवों को हमने देखा है। अतः शिष्य के लिए आसान है कि वह साधना की पहली सीढ़ी में मनुष्य–शरीर–धारी गुरु का चिन्तन करे। जब उसका ध्यान स्थिर हो जाए, तो उसे स्वयं निराकार गुरु के सूक्ष्म रूप का आभास होने लगेगा, मस्तिष्क–यंत्र से हजारों नसें आती हैं, जो शरीर के अणु तक संदेश पहुंचाती

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

हैं, और वहां से संदेश लाती हैं। अतः मस्तिष्क को सहस्रदल–कमल का स्थान कहें, तो कोई गलत बात नहीं होगी। चिन्तन मानवीय मस्तिष्क का ही काम है। अतएव गुरु सूक्ष्म–रूप से वहीं बैठे हैं।

यद् आदिस्थं च संसार-वृक्ष-बीजं अनश्वरम्।
ब्रह्मरंध्र-सिताम्भोज-मध्यस्थं चन्द्र-मंडलम्।।८१।।

आकाशे दिव्य-रेखांतः सहस्रदल-मंडिते ।
हंस-रूपे त्रिकोणे च समस्त् तं मध्यतो गुरुम्।।८२।।

वृक्ष पैदा होने से पहले भी अपने बीज में सूक्ष्म–रूप में मौजूद होता है। मौजूद न हो तो उत्पन्न ही नहीं हो सकता। संसार–रूपी वृक्ष उत्पत्ति से पहले भी अपने बीज (ब्रह्म) के रूप में रहता है। ब्रह्म और गुरु का कोई भेद नहीं। अतः दृश्यमान संसार उत्पत्ति से पहले गुरुरूप में रहता है और इस तरह गुरु अपने विशुद्ध सूक्ष्म, बीज–रूप में भी रहते हैं और संसार–रूप में भी वे अनश्वर हैं। ब्रह्म–रंध्र में स्थित सफेद, सहस्रदल–कमल के बीच इस बीज–रूपी गुरु का निवास है, और यह बीज चन्द्रमा की तरह शान्त, शीतल और आनन्द–दायक है। शिष्य को चाहिए कि वह अपने गुरु को ब्रह्म–रंध्र के सहस्रदल–कमल में बैठा समझे। गुरु ही विशुद्ध आत्मा हैं और इच्छा, ज्ञान, क्रिया–इन तीन शक्तियों के केन्द्र हैं।

इस सारे संसार के बीज ब्रह्म हैं। वे न कभी पैदा होते हैं और न उनका विनाश ही कभी हो सकता है। वे सत्–चित्–आनन्द–स्वरूप हैं। जीव भी ब्रह्म का ही संकुचित रूप

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

है। ब्रह्म में इच्छा, ज्ञान, क्रिया – ये शक्तियाँ मौजूद हैं। जीव में तो ये तीन शक्तियाँ संकुचित रूप में है। ब्रह्म में अनन्त–ज्ञान का भंडार है। अतः वे सर्वज्ञ हैं। सर्वकर्ता हैं। इसी से उनकी इच्छा–शक्ति भी अनन्त है। सिर के बीच में शिखा के नीचे एक सूक्ष्म रंध्र है, जिसे ब्रह्म–रंध्र कहते हैं। शिष्य योग–साधना से अपने ब्रह्म–रंध्र में स्थित, सहस्रदल कमल के मध्य में विराजमान, हंसरूप आत्मा को पाता है। इस साधना में आगे चलकर आत्मा ब्रह्म में ही लीन हो जाती है। तभी वेदान्त का वचन – "अहं ब्रह्मास्मि" – मैं ही ब्रह्म हूँ – सार्थक बन जाता है।

सकल-भुवन-दृष्टिः कल्पिता-शेष-दृष्टिः
अक्षगण-परमेष्टिः तत्-परार्थैक-दृष्टिः ।
निखिल-शमन-दृष्टिः संपदार्थैक-दृष्टिः
भवगण-परमेष्टिः मेरु-सारैक दृष्टिः ।।८३।।

उपरोक्त ढंग से जब साधक शिष्य अपने सहस्रार–चक्र में ब्रह्मरूप गुरु का स्मरण करता है, तो उसकी नज़र खुल जाती है। एक जगह बैठे–बैठे ही वह देख सकता है कि सारे भुवनों में क्या कुछ हो रहा है। उसकी दृष्टि पूरी हो जाती है। जहां तक उसकी नज़र जाती है, उसके आगे कुछ है ही नहीं। वह अपनी सारी इन्द्रियों (आंख, कान, नाक, मुख, उपस्थ) पर क़ाबू पा लेता है। उसे इन्द्रियाँ, विषयों की ओर नहीं दौड़ातीं। उसकी नज़र केवल परमार्थ की ओर जाती है। सांसारिक चीज़ें उसे लुभा नहीं सकतीं। ब्रह्म से एकता प्राप्त करके वह समस्त भुवनों का स्वामी बन जाता है। सारे संसार में सारभूत वस्तु – जो माला

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

में सुमेरु की तरह है – की तरफ ही उसकी नज़र जाती है। बाक़ी सब कुछ उसके लिए फीका है।

न गुरोर् अधिकं न गुरोर् अधिकः
न गुरोर् अधिकं न गुरोर् अधिकः।
मम शासनतो मम शासनतः
मम शासनतो मम शासनतः।।८४।।

इस प्रकार गुरु का साक्षात्कार करके शिष्य कहता है – (ब्रह्मरूप) गुरु से बढ़कर कुछ भी नहीं है। गुरु से बढ़कर और कोई व्यक्ति नहीं है। अर्थात् गुरु के सिवा इस विश्व में और कुछ भी नहीं है। तो उससे बढ़कर न कोई चीज़ है और न कोई व्यक्ति। शिष्य साधना की ऊँची सीढ़ी पर पहुंच कर अपने सिवा केवल ब्रह्म को पाता है। धीरे–धीरे वह स्वयं भी उसी ब्रह्म में लीन हो जाता है और ब्रह्म से एक होकर रमता है। भक्त कबीर ने कहा है :–

लाली मेरे लाल की, जित देखूं तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।

इदं एव शिवं अयमेव शिवः
इदं एव शिवं अयमेव शिवः।
शिव-शासनतः शिव-शासनतः
शिव-शासनतः शिव-शासनतः ।।८५।।

शिव–रूप गुरु के साक्षात्कार से शिष्य कहता है – इस प्रकार

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

का (उपरोक्त) अनुभव ही सबसे बड़ा कल्याण है। आज मैंने सचमुच शिव का साक्षात्कार किया। मैं जो कुछ बोल रहा हूँ यह सचमुच शिव ही बोल रहा है। ये सब बातें बिल्कुल सत्य हैं।

एवं विधं गुरुं ज्ञात्वा ज्ञानं उत्पद्यते स्वयम्।
तदा गुरूपदेशेन मुक्तोहं इति भावयेत् ।।८६।।

शिव जी पार्वती जी से कहते हैं – इस प्रकार शिष्य जब गुरु का साक्षात्कार करता है तो उसे स्वयं ज्ञान उत्पन्न हो जाता है। फिर शिष्य को चाहिए कि वह समझे 'मैं मुक्त हो गया हूँ' और मुक्ति गुरु के उपदेश से ही मिली है।'

गुरुणा दर्शितैर् मार्गैः मनः शुद्धं तु कारयेत्।
अनित्यं खंडयेत् सर्वं यत् किञ्चित् ध्यान-गोचरम् ।।८७।।

शिव जी महाराज कहते हैं – गुरु के दर्शाए मार्ग का अनुसरण करते हुए शिष्य अपने मन को शुद्ध बनाए। मन में उठने वाले सांसारिक संकल्प–विकल्पों को छोड़कर मन को उस सागर की तरह बनाए जिसमें कोई हरकत नहीं। हमारे ध्यान में जो कुछ आता है, वह सब कुछ अनित्य है। अतः मन में किसी चीज़ का ध्यान ही न आए। यही सच्चा ध्यान है। भगवान् कृष्ण ने गीता में कहा है – "ध्यानं निर्विषयं मनः"। अर्थात् ध्यान का अर्थ है – मन में कोई भी संकल्प–विकल्प न आना; मन का उस दर्पण की तरह बनना जिसमें कोई प्रतिबिम्ब नहीं। इसी ध्यान को आज कल "भावातीत योग" भी कहते हैं।

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

ज्ञेयं सर्वं अनित्यं च ज्ञानं चामन उच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं समं कुर्यात् सद्गुरोर् उपदेशतः ।।८८।।

हम अपनी इन्द्रियों (आंख, कान, नाक, जिह्वा, त्वचा) या मन (या मस्तिष्क) से जो कुछ ज्ञान पाते हैं, उसे शास्त्रों में "ज्ञेय" कहते हैं। सब "ज्ञेय" अनित्य (नाशवान्) है। प्रश्न पैदा होता है कि हम मन या मस्तिष्क से ब्रह्म को भी जानते हैं, तो क्या ब्रह्म भी अनित्य है ? नहीं, सच्चाई यह है कि मन या इन्द्रियों से ब्रह्म का ज्ञान नहीं होता; ज्ञान में मन काम नहीं देता। गुरु के उपदेश से शिष्य योग–साधना से शुद्ध हो जाता है, तो उसे अन्दर से ज्ञान का अनुभव हो जाता है। ऐसी स्थिति में ज्ञान (जानना) ज्ञेय (जानी गई चीज़) एक होकर ज्ञाता (जानने वाले साधक) में समा जाते हैं। इस प्रकार ज्ञेय, ज्ञान और ज्ञाता एक हो जाते हैं, और साधक अपने स्वरूप (ब्रह्म) से एक होकर रमता है।

चैतन्यं शाश्वतं शान्तं व्योमातीतं निरञ्जनम्।
नाद-बिन्दु-कलातीतं तं गुरुं प्रणमाम्यहम्।।८९।।

गुरु का स्थूल शरीर गुरु नहीं अपितु गुरु की चेतन आत्मा ही गुरु है। गुरु (ब्रह्म–स्वरूप होने से) नित्य रहते हैं। वे शान्त हैं। सर्वव्यापक गुरु व्यापक आकाश को भी लांघ कर गए हैं। इस संसार में रहते हुए भी गुरु निर्लेप हैं – उन पर कर्म करने से कोई लेप नहीं चढ़ता। गुरु कर्मों के बंधन में नहीं पड़ते। गुरु नाद (शब्द) बिन्दु (प्वाइंट) कला से आगे हैं। गुरु को मैं प्रणाम करता हूँ।

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

साधक भक्त जब ध्यान करता है तो उसके ध्यान में कोई आकृति आती है। निरन्तर अभ्यास से यह आकृति सूक्ष्म होते होते एक बिन्दु (प्वाइंट) पर आती है और साधक के ध्यान में बिन्दु ही आता है। बिन्दु सूक्ष्म है। इसकी लंबाई, चौड़ाई, मोटाई नहीं होती, किन्तु इसकी सत्ता है। आगे, ध्यान से बिन्दु भी चला जाता है, क्योंकि सारा ब्रह्माण्ड ही उसके ध्यान में आ जाता है – उसके ध्यान में कोई विशेष आकृति नहीं आती। यह एक अनिर्वचनीय अनुभव है। इसी दशा को "बिन्दुकलातीत" कहते हैं। यही दशा 'नादकलातीत' भी है, क्योंकि इस विलक्षण अनुभव में साधक जिस चीज़ का अनुभव करता है उसे जताने के लिए उसके पास कोई शब्द नहीं।

स्थावरं निर्मलं शान्तं जंगमं स्थिरं एव च।
व्याप्तं येन जगत् सर्वं तस्मै श्री गुरवे नमः।६०।।

इस जगत् में कई वस्तुएं एक जगह टिकी हैं, जैसे पहाड़, आदि। कई चीजें चलती फिरती हैं, जैसे जीवधारी प्राणी। कई लोग निर्मल और शान्त हैं; जैसे योगी, महात्मा। इन सारी वस्तुओं में एक गुरु व्याप्त हैं। उनको मेरा नमस्कार हो।

ज्ञान-शक्ति-समारूढं तत्व-माला-विभूषितम्।
भुक्ति-मुक्ति-प्रदातारं तं गुरुं प्रणमाम्यहम्।।६१।।

गुरु ज्ञानी होने से ब्रह्म से अभिन्न हैं। इस कारण ब्रह्म के शक्ति–भंडार पर गुरु का पूरा अधिकार है। गुरु तत्वों (ओक्सिजन, नाइट्रोजन आदि १०० से अधिक मूलभूत द्रव्यों) की माला पहने

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

है। गुरु सामर्थ्यवान् हैं। अतः अपने भक्तों को इस संसार का वैभव और (ज्ञान–मार्ग पर चलाकर) मुक्ति देने वाले हैं। गुरु को मैं प्रणाम करता हूँ।

ब्रह्म अनन्त शक्ति (ऊर्जा) के भंडार हैं। उनकी शक्ति स्थूल बनकर द्रव्य रूप में आती है। द्रव्यों से संसार की सभी वस्तुएं बनती हैं। द्रव्य ही मूलभूत तत्व है। रसायन–शास्त्री इन की संख्या १०८ मानते हैं। माला में १०८ दाने होते हैं। गुरु की १०८ दानों की माला इस बात की द्योतक है कि गुरु को १०८ तत्वों पर पूरा अधिकार है। ब्रह्म में अनन्त शक्ति है। शक्ति के एक अंश से संसार की सभी चीज़ें बनती हैं। संसार–रूप में शक्ति के आने से ब्रह्म की अनन्त शक्ति में कोई अन्तर नहीं आता। अनन्त में से कोई परिमित (फैनाइट) राशि निकले भी, तो भी अनन्त (इनफिनिट) अनन्त ही रहता है। यह विज्ञान का एक सिद्धान्त है।

अनेक-जन्म-संप्राप्त-कर्म-बन्ध-विदाहिने ।
ज्ञानानल-प्रभावेन तस्मै श्री गुरवे नमः।।६२।।

जीव अनेक जन्म–जन्मान्तरों से कर्म जुटाता हुआ आता है। उनका फल अवश्य भुगतना है। अतः कर्म बंधन हैं। कर्मों से बंधा प्राणी कर्मफल भुगतने के लिए संसार में आता जाता रहता है। गुरु ज्ञान देते हैं। इस से कर्म–बंधन उसी तरह जल कर नष्ट होता है जिस तरह अग्नि में पड़ने से चीजें जल जाती हैं। ऐसे महत्वशाली गुरु को नमस्कार हो।

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

न गुरोर् अधिकं तत्वं न गुरोर् अधिकं तपः।
तत्व-ज्ञानात् परं नास्ति तस्मै श्री गुरवे नमः।।६३।।

गुरु से बढ़कर कोई चीज़ नहीं। गुरु–सेवा से बढ़कर कोई तपस्या नहीं। गुरु–सेवा से प्राप्त ज्ञान से बढ़कर कोई ज्ञान नहीं है। मैं ऐसे गुरु को प्रणाम करता हूँ।

मन्-नाथः श्री जगन्नाथो मद् गुरुः श्री जगद् गुरुः।
स्वात्मैव सर्वभूतात्मा तस्मै श्री गुरवे नमः। ।।६४।।

मेरे मालिक सारे संसार के मालिक हैं। मेरे गुरु सारे संसार के गुरु हैं। गुरु मेरी आत्मा हैं। गुरु सब की आत्मा हैं। गुरु को मेरा नमस्कार हो।

गुरुर् आदिर् अनादिश्च गुरुः परम दैवतम्।
गुरोः परतरं नास्ति तस्मै श्री गुरवे नमः।।६५।।

गुरु सब से पहले थे। गुरु से पहले कुछ भी न था। गुरु सबसे बड़े देवता हैं। गुरु से बढ़कर कुछ भी नहीं हैं। गुरु को मेरा प्रणाम हो।

ध्यान -मूलं गुरोः मूर्तिः पूजा-मूलं गुरोः पदम्।
मन्त्रमूलं गुरोर् वाक्यं मोक्षमूलं गुरोः कृपा।।६६।।

यदि ध्यान करना है तो ध्यान गुरु की आकृति का करना चाहिए। यदि पूजा करनी हो तो गुरु चरणों की पूजा करनी चाहिए। गुरु ने बताया मन्त्र ही बड़ा मंत्र है। मुक्ति गुरु की कृपा

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

से ही मिल सकती है। गुरु के अनुग्रह से शिष्य को साधना का रास्ता मिलता है और साधना से मुक्ति मिलती है।

सप्त-सागर-पर्यन्तं तीर्थ-स्नानफलं परम्।
गुरोर्-अंघ्रि-जल बिन्दोः' सहस्रांश-समं मतम्।।६७।।

सात समुद्रों के दायरे में जितने भी तीर्थ हैं, उनमें स्नान करने से अच्छा फल मिलता है, परन्तु जिस पानी में गुरु के चरण धोए हों, उस पानी की एक बूंद तीर्थजल से हज़ार गुणा महत्व रखती है।

गुरुर् एव जगत् सर्वं ब्रह्म-विष्णु-शिवात्मकम्।
गुरोः परतरं नास्ति तस्मात् संपूजयेत् गुरुम्।।६८।।

ब्रह्म–स्वरूप गुरु ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव का रूप धारण करते हैं। फिर जगत् के रूप में प्रकट होते हैं। गुरु के सिवा और कुछ भी नहीं। अतः गुरु ही सब से बड़े हैं। उनसे बड़ा कुछ भी नहीं है। इस कारण गुरु की ही पूजा करनी चाहिए।

ज्ञानं विना मुक्ति-पदं लभ्यते गुरु-भक्तितः।
गुरु-तुल्यः यतो नान्यः साधयेत् गुरुं मार्गतः।। ६६।।

शिष्य में ब्रह्म–स्वरूप गुरु की अनन्य भक्ति हो तो बिना ज्ञान के भी मुक्ति मिलती है। गुरु के बराबर और कोई भी नहीं है। इस कारण विधिपूर्वक गुरु को अपने अनुकूल बनाना चाहिए।

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

एवं ज्ञात्वा महादेवि ! गुरोः निन्दां करोति यः।
स याति नरकान् घोरान् यावत् चन्द्रदिवाकरौ।।१००।।

शिव जी पार्वती से कहते हैं – हे महादेवि ! अभी तक गुरु की महानता के बारे में जो कहा गया है, उसे जानकर भी जो शिष्य गुरु की निन्दा करे वह घोर नरकों को जाता है, और तब तक नरक–यातना भोगता है जब तक सूर्य और चन्द्रमा मौजूद हैं।

गुशब्दस्तु गुणातीतो रूपातीतो रुकारकः।
गुण-रूप विहीनत्वात् गुरुर् इत्यभिधीयते।।१०१।।

गुरु शब्द के 'गु' का अर्थ है – सत्व, रजः, तमः – इन तीन गुणों से परे। –'रु' का अर्थ है – जिसका कोई रूप न हो। इस प्रकार निर्गुण, निराकार, नीरूप होने के कारण गुरु को 'गुरु' कहते हैं।

यहां गुरु ब्रह्म ही हैं। ब्रह्म ही सभी रूप धारण करते हैं। अतः ब्रह्म का कोई रूप नहीं। कोई एक रूप हो तो ब्रह्म सीमित बनते हैं और वह अन्य रूप धारण नहीं कर सकते। इसी प्रकार गुनातीत ब्रह्म ही कभी सात्विक, कभी राजस और कभी तामस बन जाते हैं।

करुणा खड्ग-पातेन छेत्ता स्व-शिष्य-पाशकान्।
सम्यग् आनन्द-जनकः सद्गुरुः सोभिधीयते।।१०२।।

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

सद्गुरु दयार्द्र होकर अपने शिष्य के कर्म–बंधन काट देते हैं। मानो तलवार से रस्सी काटते हों। वे शिष्य को पूरा–पूरा आनन्द देते हैं। ऐसे गुरु ही 'गुरु' कहलाने योग्य हैं।

यावत् जीवेत् अयं जीवो गुरुं तावत् सदा स्मरेत्।
गुरु-लोपो न कर्तव्यः स्वच्छन्दो यदि वा भवेत्।।१०३।।

प्राणी जब तक ज़िन्दा है, गुरु को याद करते रहे। यदि साधना करने से मनुष्य जीवन्युक्त भी हो जाए, तो भी गुरु को नहीं भूलना चाहिए।

हुंकारेण न वक्तव्यं असत्यं वा कदाचन।
न स्थातव्यं गुरोर् अग्रे धृष्ट-रूपेण वा क्वचित्।।१०४।।

शिष्य अपने गुरु से कभी झूठ न बोले। वह कभी असभ्य, अविनीत ढंग से गुरु से बात न करे। गुरु के सामने उद्धत रूप से कभी न बैठे।

गुरुं त्वंकृत्य हुंकृत्य जयेच्छो यो विवादकः ।
अरण्ये निर्जले देशे स भवेत् ब्रह्म-राक्षसः।।१०५।।

जो शिष्य वाद–विवाद में अपने गुरु को पराजित करना चाहता है, और असभ्य ढंग से गुरु से 'तुम' कहके वाद–विवाद करता है, वह ऐसे जंगल में ब्रह्म–राक्षस बनता है जहां पानी भी न हो।

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

मुनिभिः पन्नगैर् वापि सुरैर् वा शापितो यदि।
काल-मृत्यु-भयाद् वापि गुरुः रक्षति पार्वति।।१०६।।
अशक्ताः हि सुराद्याश्च ह्यशक्ताः मुनयस् तथा।
गुरु-शापेन ते क्षीणाः क्षयं यान्ति न संशयः।।१०७।।

हे पार्वति ! ऋषियों, देवताओं, नागों के शाप से गुरु रक्षा करते हैं। महाकाल के भय से भी गुरु बचा सकते हैं। ऋषियों, देवताओं का गुरु के सामने कुछ नहीं चलता। गुरु के शाप से वे भी अशक्त हो जाते हैं। वे सदा के लिए अशक्त, अपाहिज बन कर रहते हैं।

श्रुति-स्मृति-तत्व-ज्ञानं प्राप्नोति गुरु-सेवया।
ते वै संन्यासिनः प्रोक्ता इतरे वेश-धारिणः।।१०८।।

शिष्य वेदों, स्मृतियों में निहित तत्वज्ञान गुरु की सेवा करने से प्राप्त करता है। सभी विद्याओं में से अध्यात्मविद्या श्रेष्ठ है। अध्यात्मविद्या हमारे वेदों स्मृतियों में गुप्त रूप से निहित है। उसे पहचानना, उस तक पहुंचना, आसान काम नहीं है। वह ज्ञान तभी प्राप्त होता है जब गुरु दया करके शिष्य को समझाएं। सेवा करने से ही गुरु संतुष्ट हो जाते हैं और शिष्य पर कृपा करके उसे वह रहस्य ज्ञान देते हैं। इस प्रकार तत्वज्ञान की अभिलाषा रख कर गुरु की सेवा करने वाले शिष्य ही सच्चे सन्यासी हैं। बाकी केवल सन्यासी का वेश धारण करते हैं; सच्चे सन्यासी नहीं।

यत्रैव तिष्ठति सोपि स देशः पुण्य-भाजनम्।
मुक्तस्य लक्षणं देवि तवाग्रे कथितं मया।।१०९।।

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

शिव जी पार्वती से कहते हैं – हे देवि ! मैंने तुमको मुक्तात्मा सज्जन का लक्षण पहले कह दिया। मुक्तात्मा पुरुष जहां ठहरे वह देश ही पवित्र है। वहां रहने से पुण्य प्राप्त होता है। आशय यह है कि मुक्त पुरुष के संग से हमारा आचरण पवित्र बन जाता है, और हम भी पुण्यात्मा बनते हैं।

मंत्रराजं इदं देवि ! गुरुर् इत्यऽक्षर-द्वयम्।
स्मृति-वेदार्थ-वाक्यानां गुरुः साक्षात् परं पदम्।।११०।।

'गु', 'रु' इन दो अक्षरों से बना 'गुरु' शब्द एक उत्कृष्ट मंत्र है। कारण यह है कि ब्रह्मस्वरूप गुरु से ही वेदों और स्मृतियों में लिखे वाक्य निकले हैं। सभी मंत्र–विद्याएं परम शिव से आती हैं। ब्रह्म, शिव, 'गुरु' एक ही तत्व के विभिन्न नाम हैं। शिव–स्वरूप 'गुरु' स्वयं महान् मंत्र हैं।

नित्यं ब्रह्म निराकारं निर्गुणं बोधयेत् परम्।
पूर्णं ब्रह्म निराभासं दीपो दीपान्तरात् यथा।।१११।।

ब्रह्म पूर्ण हैं सृष्टि के रहते या प्रलय में उनमें कभी कोई अंतर नहीं आता, और न उनमें पूर्णता की ही कमी होती है। ब्रह्म का कोई आकार नहीं। तभी तो वे किसी प्रकार का भी आकार ग्रहण कर सकते हैं। उनमें सत्व, रजः, तमः – इन तीन गुणों में से कोई गुण नहीं। इस प्रकार के ब्रह्म मृगतृष्णा (मरु मरीचिका) की तरह आभास मात्र नहीं, परन्तु एक वास्तविक सत्ता हैं। जैसे जलता हुआ दीपक दूसरे दीप को प्रज्वलित करता है, ऐसे ही ब्रह्म–स्वरूप, ज्ञानी, गुरु शिष्य को ज्ञान देकर अपने वास्तविक

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

ब्रह्म–स्वरूप का अनुभव करा देते हैं। शिष्य और गुरु दोनों ब्रह्म–स्वरूप हैं। अंतर केवल इतना है कि गुरु में ज्ञान की ज्योति है, शिष्य में नहीं। जब गुरु शिष्य को ज्ञान की ज्योति देते हैं, तो शिष्य इस ज्योति में अपने स्वरूप को देखता है और अपने को ब्रह्म ही पाता है। उसमें ब्रह्म के उपरोक्त सभी गुण प्रकट हो जाते हैं।

गुरोः कृपा-प्रसादेन ह्यात्मारामं निरीक्षयेत्।
अनेन मुक्ति-मार्गेण स्वात्म-ज्ञानं प्रवर्तते।।११२।।

आब्रह्मस्तम्भ-पर्यन्तं परमात्म-स्वरूपकम्।
स्थावरं जंगमं सर्वं प्रणमामि जगद्गुरुम्।।११३।।

गुरु जब प्रसन्न होकर दया करते हैं तो शिष्य अपने ही अन्दर ब्रह्म को पाते हैं। इस तरह अपने वास्तविक रूप का ज्ञान हो जाने से शिष्य को मुक्ति मिलती है। ब्रह्म से लेकर समूचे, जड़ एवं चेतन तक सब कुछ परमात्मा का ही स्वरूप है। गुरु ही परमात्मा हैं और जगत् के स्थावर, जंगम – सभी वस्तुओं के रूप में प्रकट हो जाते हैं। मैं गुरु को नमस्कार करता हूँ।

वन्देहं सत्-चिद्-आनन्दं भेदातीतं गुरोः पदम्।
नित्यं पूर्णं निरामासं निगुर्णं स्वात्म-संस्थितम् ।।११४।।

परात् परतरं ध्येयं नित्यं आनन्द-कारकम्।
हृदयाकाश-मध्यस्थं शुद्ध-स्फटिक-सन्निभम्।।११५।।

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

गुरु का पद, अर्थात् श्री गुरु, भेद से परे हैं। गुरु के सिवा दूसरी कोई चीज़ है ही नहीं, तो गुरु का किस से भेद किया जाए ? गुरु 'सत्' हैं अर्थात् उनकी सच्ची सत्ता है। वे मृगतृष्णा की तरह आभास–मात्र नहीं हैं। वे चैतन्य स्वरूप हैं और आनंद ही आनंद हैं। वे नित्य पूर्ण (पूरे, अक्षुण्ण, इनफिनिट) रहते हैं। उन्हीं का एक अंश जगत्–रूप में प्रकट हो जाता है। उस समय भी वे पूरे के पूरे ही हैं क्योंकि जगत भी वहीं हैं। इस तरह उन का अंग जगत् भी उन से अभिन्न होने के कारण पूर्ण है। यही बात श्रुति भी कहती है – "पूर्ण अदः पूर्ण इदं पूर्णात् पूर्ण उदच्यते। पूर्णस्य पूर्ण आदाय पूर्ण एवावशिष्यते" – वे ब्रह्म पूर्ण हैं। उनका अंग यह जगत् भी पूर्ण है। पूर्ण से पूर्ण का ही विकास हो जाता है। ब्रह्म का अंश, जगत्–रूप में अलग भी निकले तो भी ब्रह्म पूर्ण ही रहता है, क्योंकि अनन्त (इनफिनिटी) – फाइनाइट = अनन्त (इनफिनिटी)।"* गुरु सत्व, रजः, तमः – तीन गुणों से परे हैं। उन्हें ढूंढ़ने बाहर नहीं जाना है। वह मेरे से अभिन्न होने से मेरे में ही हैं। कबीर ने भी कहा है –

"कस्तूरी कुंड़ल बसे, मृग ढूंढ़े बन मांही।
ऐसे घट घट राम हैं, दुनिया जाने नांही"।

वे मेरे ध्यान का केन्द्र हैं। वे महान् से महान् हैं। वे आनन्द स्वरूप हैं और भक्तों को भी आनन्द देते हैं। वे मेरे हृदय में नित्य निवास करते हैं। वे शुद्ध बिलौर की तरह निर्मल, निर्लेप हैं। बिलौर के सामने कोई भी वस्तु आ जाए तो उसका प्रतिबिम्ब भले ही बिलौर में पड़े, बिलौर के स्वरूप में कोई अन्तर नहीं आता। इसी प्रकार गुरु इस त्रिगुणमय संसार में रहकर भी अपने

*** (Infinity minus finite is infinity.)**

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

स्वरूप, आनन्द में ही रहते हैं। उनमें कोई परिवर्तन नहीं आता।

भौतिक शास्त्र (फिज़िक्स) में एक सिद्धान्त है कि ब्रह्माण्ड में एनर्जी (शक्ति) का भंडार पूरे का पूरा रहता है। वह नाना रूपों में प्रकट भी हो जाए, तो भी योग एक ही रहता है, और शक्ति के वास्तविक स्वरूप में कोई अन्तर ही नहीं आता। इसी प्रकार सृष्टि दशा में भी ब्रह्म में कोई कमी नहीं होती और न उनके वास्तविक स्वरूप में कोई अन्तर आता है। ब्रह्म ही शक्तिरूप हैं।

स्फाटिके प्रतिमा-रूपं दृश्यते दर्पणे यथा।
तथात्मानं चिद् आकाशे संस्मरेत् सोहं इत्युत।।११६।।

बिलौर के साफ दर्पण के सामने कोई प्रतिमा हो, तो वह वैसी की वैसी दपर्ण में दिखाई देती है। यहां दो बातें हैं –एक तो यह कि दर्पण में प्रतिबिम्ब तभी दिखाई देगा जब प्रतिमा सामने मौजूद हो, अन्यथा नहीं। दूसरी यह कि प्रतिबिम्ब प्रतिमा से अलग नहीं। प्रतिमा से अलग करके उसकी सत्ता ही नहीं। इसी प्रकार प्राणिमात्र के चैतन्य में कम से कम यह आभास है – "मैं हूँ"। यह "मैं" ब्रह्म का ही प्रतिबिम्ब है। इसकी सत्ता ब्रह्म से अलग –थलग हो ही नहीं सकती। यह 'मैं' ब्रह्म से अभिन्न है। यही बात याद रखनी चाहिए।

अंगुष्ट-मात्रं पुरुषं ध्यायेत् च चिन्मयं हृदि।
तत्र स्फुरति भावो यः शृणु तं कथयाम्यहम्।।११७।।

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

अपने हृदय में उन पुरुष का ध्यान करना चाहिए जिनका स्वरूप चेतनता के सिवा और कुछ नहीं, और जिनका परिमाण अंगूठे से अधिक नहीं। ऐसा करने से जो भाव अपने अन्दर अनायास पैदा होता है, वह मैं कहता हूँ। तुम सुनो। ध्यान की पहली सीढ़ी में मन निराकार पर एकाग्र हो ही नहीं सकता। अतः परिमित आकार पर ध्यान करने के लिए कहा गया है। आगे चलकर स्वयं सूक्ष्मता आती है, जैसा कि आगे कहा गया है।

अजोहं अजरं नित्यं अनादिं नित्यतां गतम्।
अविकारं चिदानन्दं प्रणयात् तं स्मराम्यहम्।।११८।।

उपरोक्त ध्यान से साधक समझने लगता है – मैं नित्य हूँ। मेरा जन्म कभी नहीं हुआ था। पुरुष (आत्मा) की 'आदि' कभी नहीं थी। अर्थात् आत्मा नित्य थी। आत्मा चेतन और आनन्द–स्वरूप है। उस आत्मा का मैं प्रेम से स्मरण करता हूँ।

अपूर्वानन्द-दं नित्यं स्वयं ज्योतिः निरामयम्।
विरजस्कं परं शंभुं आनन्दं परं अव्ययम् ।।११९।।

अगोचरं तथागम्यं नाम-रूपादि-वर्जितम्।
निःशब्दं तं विजानीयात् स्वभावं ब्रह्म पार्वति।।१२०।।

शिव जी कहते हैं – हे पार्वति ! ब्रह्म आनन्द–स्वरूप हैं। उनमें कोई विकार नहीं होता। वे हमेशा एक जैसे रहते हैं। उनमें चंचलता, दुःख, काम–वासना आदि बातें नहीं हैं। उनका

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

आनन्द अपने तरह का है। सांसारिक आनन्द से वे विलक्षण हैं। उनके समावेश से जीव भी वैसा ही आनन्द प्राप्त करता है। ब्रह्म स्वयं प्रकाशमान हैं। उन्हें प्रकाशित करने के लिए किसी अन्य वस्तु की आवश्यकता नहीं। वे दुनिया के दुःख–दर्द से परे हैं। मन, बुद्धि तथा इन्द्रियाँ उनको जान नहीं पातीं। वे नाम–रूप से रहित हैं। उनका रूप नहीं है। जिस चीज़ को बहुत से लोग जानते हैं, उसका बोध कराने के लिए नाम होता है। जो चीज़ ऐसी नहीं, उसका नाम कैसे हो सकता है ? शब्दों द्वारा उसका वर्णन नहीं हो सकता। साधक उसे अपने अनुभव से जान सकता है। वे ब्रह्म साधक से अलग नहीं हैं। साधक जब उनका अनुभव करता है, तो इस अनुभव को प्रकट करने के लिए शब्द काम नहीं देते।

यथा निज-स्वभावेन कर्पूर-कुसुमादिषु।
शीतोष्णादि स्वभावश्च तथा ब्रह्म च शाश्वतम्।।१२१।।

कर्पूर ठंडा होता है। कई फूल (जैसे केसर का फूल) गर्म प्रकृति के हैं। यह वस्तुओं का निजी स्वभाव है। उसी प्रकार ब्रह्म स्वभाव से ही नित्य हैं।

स्वयं तथाविधो भूत्वा स्थातव्यं यत्रकुत्रचित्।
कीटो भृंग इव ध्यानाद् यथा भवति तादृशः।।१२२।।

साधक शिष्य अपने में ब्रह्म के सभी गुणों का ध्यान करके कहीं भी रहे। साधना और अभ्यास से साधक भी समय पर ब्रह्म

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

ही बन जाता है, जिस प्रकार एक विशेष प्रकार का कीड़ा बाहर घूमते भौंरे का निरन्तर ध्यान करने से स्वयं भी भौंरा बनकर बाहर आता है।

किं अत्र बहुनोक्तेन शास्त्र-कोटि-शतेन च।
दुर्लभा चित्त-विश्रान्तिः सद्-गुरोः करुणां विना।।१२३।।

शिवजी कहते हैं कि गुरु की महानता के बारे में कहने – सुनने से, या सैंकड़ों करोड़ों शास्त्र पढ़ने से कोई लाभ नहीं। वास्तविकता यह है कि गुरु की दया के बिना मन को शान्त करना आसान नहीं।

निमेषार्धार्ध-पातेन यद् वाक्याद् वै विलोक्यते।
स्वात्मा च स्थैर्यं आदत्ते तस्मै श्री गुरवे नमः।।१२४।।

जिन गुरु के उपदेश से शिष्य बहुत थोड़े समय में देख सकता है (उसको ज्ञान प्राप्त हो जाता है) और उसका मन स्थिर हो जाता है, उस गुरु को नमस्कार हो।

गुरु-ध्याने सदा सक्तो देही ब्रह्ममयो भवेत्।
पिण्डे पदे तथा रूपे मुक्तोसौ नात्र संशयः।।१२५।।

निरन्तर गुरु का ध्यान करने से शिष्य ब्रह्म ही बन जाता है। अपने शरीर, अपने पद, अपने रूप के साथ उसका कोई लगाव नहीं रहता। वह पूर्णतया मुक्त हो जाता है। अथवा, इसका

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

अर्थ यों है – कुंडलिनी शक्ति में, आत्मा में, बिन्दु में, वह मुक्त है। कई मुमुक्ष कुंडलिनी जागरण करके मुक्ति पाना चाहते हैं। कई आत्मा का विवेक करके आत्मा को शरीर आदि प्रकृति से अलग समझ कर मुक्त हो जाते हैं। कई ध्यानयोगी ध्यान करते–करते बिन्दु पर आ जाते हैं और फिर सारा ब्रह्माण्ड ही उनके ध्यान में आ जाता है। वे विश्व–रूप बन जाते हैं। यही मुक्ति है। इस प्रकार एक ही लक्ष्य पर पहुँचने के लिए ये तीन रास्ते हैं। साधक ब्रह्म–रूप गुरु के ध्यान में लगा रहे, तो भी उसी लक्ष्य पर पहुंचता है।

स्वयं सर्वमयो भूत्वा तत् पदं चावलोकयेत्।
परात् परतरं नान्यत् सर्व एव निरामयम् ।।१२६।।

साधक सभी वस्तुओं में अपना आप ही समझ ले। इसी से ब्रह्म की वास्तविकता जानी जाती है। ब्रह्म से दूसरी वस्तु कोई भी नहीं है। इससे सारी बात स्पष्ट है। सारा ब्रह्माण्ड ही ब्रह्म है तो साधक समस्त वस्तुओं में अपना आप ही समझे। साधक ब्रह्म से भिन्न नहीं।

तस्यावलोकनाद् एव सर्व-संग-विवर्जितः।
एकाकी निस्पृहः शान्तः तिष्ठेत् तस्य प्रसादतः।।१२७।।

इस प्रकार अपने को सभी वस्तुओं में देखने से साधक को ब्रह्म का ज्ञान प्राप्त हो जाता है। सांसारिक विषयों में उसकी आसक्ति नहीं रह जाती। वह अकेला अपने में मस्त रहता है।

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

उसे कोई इच्छा नहीं रह जाती। ब्रह्म के प्रसाद से वह शान्त होकर आनन्द में मस्त रहता है।

लब्धं वापि-अथवा-अलब्धं अल्पं वा बहुलं तथा।
निष्कामैर् एव भोक्तव्यं सदा संतुष्ट-मानसैः।।१२८।।

साधक को कुछ मिले या न मिले, कम मिले या ज़्यादा, संतोष करना चाहिए। जो भी कुछ मिले, निष्काम होकर उसी का उपभोग करना चाहिए।

सर्वज्ञपदं इत्याहुः देही सर्वमयो हि सः।
सदा शान्तः सदानन्दो रमते यत्रकुत्रचित्।।१२९।।

साधक जब सभी वस्तुओं में अपना आप ही देखता है तो वह स्वयं सर्वज्ञ बन जाता है। जब सभी पदार्थ उसका अपना ही रूप हैं, तो वह किस चीज़ से अपरिचित हो सकता है ? वह जहाँ कहीं भी रहे, शान्त होकर रहता है। अपने आनन्द में रमता है।

स्वकुलाकुल-कोटीश्च तारयेत् सोपि तत् क्षणात्।
अतस्तं सद्-गुरुं ज्ञात्वा त्रिकालं अभिवन्दयेत्।।१३०।।

साष्टांग-प्रणिपातेन स्तुवन्नित्यं गुरुं भजेत्।
भजनात् स्थैर्यं आप्नोति स्व-स्वरूपमयो भवेत् ।।१३१।।

उपरोक्त साधक क्षणमात्र में अपने तथा अन्य लोगों के करोड़ों कुलों को भवसागर के पार उतार देता है।ऐसे व्यक्ति को पहचान

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

कर गुरु बनाना चाहिए। दिन में तीन बार उन्हें प्रणाम करना चाहिए। सदा उनकी स्तुति करनी चाहिए। आठ अंगों से प्रणाम करके उनका भजन करना चाहिए। इससे मन स्थिर हो जाता है। साधक शिष्य को अपने स्वरूप का ज्ञान हो जाता है।

शिवे रुष्टे गुरुस् त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन।
लब्ध्वा कुल-गुरुं सम्यग् गुरोः सेवां समाचरेत्।।१३२।।

यदि हम से शिव रूठ जाएं तो गुरु हमें बचा सकते हैं, परन्तु यदि गुरु रूठ जाएं तो हमें कोई नहीं बचा सकता। इस कारण अपने कुल के गुरु को पाकर उनकी तन मन से सेवा करनी चाहिए।

मधु-लुब्धो यथा भृंगः पुष्पात् पुष्पान्तरं व्रजेत्।
ज्ञानलुब्धस् तथा शिष्यो गुरोः गुर्वन्तरं व्रजेत् ।।१३३।।

भौंरा शहद पाने की इच्छा से एक फूल से दूसरे फूल को जाता है। ज्ञान संचित करने के लिए शिष्य इसी प्रकार कई गुरुओं के पास जाता रहे (जब तक कि उसे अपनी रुचि के अनुसार गुरु की प्राप्ति न हो जाए।)

ज्ञानहीनो गुरुस् त्याज्यो मिथ्यावादी हि दाम्भिकः।
स्व-विश्रान्तिं न जानाति परान् विश्रान्तयेत् कथम् ?१३४।।

शिलायां किं परं पारं ? शिला-संगं परित्यजेत्।
स्वयं तीर्णोभवेत् नासौ परं निस्तारयेत् कथम् ?।१३५।।

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

न वन्दनीयाः कष्टेपि दर्शने भ्रान्तिकारकाः।
गुरवः वर्जनीयाः स्युः सुशिष्यैः सन्मताश्रयैः।।१३६।।

यदि किसी शिष्य को विश्वास हो जाए कि उस का गुरु अज्ञान में डूबा है, उसमें कोई ज्ञान नहीं, वह झूठ बोलने वाला है और पाखंडी है, तो गुरु को छोड़ दे। ऐसा गुरु अपने मन को स्थिर नहीं बना सकता। दूसरों को कैसे मन स्थिर बनाना सिखाए? पत्थर पानी में पार नहीं किया जा सकता अपितु डूबता है। कोई पत्थर के सहारे पार जाने की नहीं सोचता। पाखंडी गुरु स्वयं भवसागर को पार नहीं कर सकता। दूसरों को वह कैसे पार उतारे ? सही मत पर चलने वाले बुद्धिमान् शिष्य ऐसे गुरु का आसरा न लें, उसे दूर छोड़ें। जो दर्शनों का ज्ञान नहीं रखता हो, जिसने दर्शनों के बारे में भ्रान्त धारणाएं बना रखी हों। कष्ट में पड़ कर भी ऐसे गुरु की शरण में नहीं जाना चाहिए।

शिष्यस्तु नात्र हे देवि ! प्रशंस्यो येन-केन-चित्।
सोपि ज्ञानं अवाप्नोति भक्त्या परमया गुरोः ।।१३७।।

शिव जी पार्वती से कहते हैं – हे देवि ! यदि ऐसा कोई शिष्य हो जिसे कोई ठीक नहीं समझता है, वह भी यदि गुरु की बड़ी भक्ति करे तो समय पर ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

गूढ़ाः दृढ़ाश्च भक्ताश्च मौन-व्रत-परायणाः।
सदा-संत्यक्त-कामाश्च पंचधा गुरवो मताः।१३८।।

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

गुरु पाँच प्रकार के माने गए हैं – पहले वे जो अपने आध्यात्मिक ज्ञान और अपनी शक्ति का प्रकाशन ही नहीं करते। ये लोग संसार के अन्य साधारण मनुष्यों की तरह लगते हैं, पर आध्यात्मिक दृष्टि से बहुत ऊपर उठे होते हैं। दूसरे, वे जो अपनी धुन के पक्के होते हैं और अपने मार्ग से कभी विचलित नहीं होते। तीसरे, वे जिनमें अपने इष्ट की अनन्य भक्ति होती है। चौथे, वे जो अन्तर्मुख होकर ब्रह्म–चिन्तन में लगे रहते हैं और मौन धारण किए रहते हैं। पांचवें वे जो अनासक्त होते हैं – जिन्हें किसी भी चीज़ की इच्छा ही नहीं होती।

श्रीगुरोः पादुकां मुद्रां मुखमन्त्रं च गोपयेत्।
गुरोः कृपार्जितं सम्यग् वस्तु अभीष्ट करं सदा।।१३६।।

शिष्य को चाहिए कि गुरु–मुख से प्राप्त मन्त्र को किसी और के सामने प्रकट न करे। प्रकट करने से अध्यात्म–मार्ग में उस की अवनति होती है। यदि गुरु–महाराज ने उसे अपनी खड़ाऊँ या अपनी कृपा की प्रतीक कोई अन्य वस्तु प्रदान की हो, उसे भी किसी और को नहीं दिखाना चाहिए, क्योंकि गुरु–कृपा से प्राप्त सभी वस्तुएं शिष्य के कल्याण का कारण बनती हैं।

गुरु-त्यागात् भवेत् मृत्युः मन्त्र-त्यागाद् दरिद्रता।
गुरु-मंत्र-परित्यागी रौरवं नरकं व्रजेत् ।।१४०।।

अपने सद्गुरु को छोड़ देने से शिष्य की मौत हो जाती है। अपने इष्ट मंत्र को छोड़ देने से गरीबी आ घेरती है।

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

गुरु पाँच प्रकार के माने गए हैं – पहले वे जो अपने आध्यात्मिक ज्ञान और अपनी शक्ति का प्रकाशन ही नहीं करते। ये लोग संसार के अन्य साधारण मनुष्यों की तरह लगते हैं, पर आध्यात्मिक दृष्टि से बहुत ऊपर उठे होते हैं। दूसरे, वे जो अपनी धुन के पक्के होते हैं और अपने मार्ग से कभी विचलित नहीं होते। तीसरे, वे जिनमें अपने इष्ट की अनन्य भक्ति होती है। चौथे, वे जो अन्तर्मुख होकर ब्रह्म–चिन्तन में लगे रहते हैं और मौन धारण किए रहते हैं। पांचवें वे जो अनासक्त होते हैं – जिन्हें किसी भी चीज़ की इच्छा ही नहीं होती।

श्रीगुरोः पादुकां मुद्रां मुखमन्त्रं च गोपयेत्।
गुरोः कृपार्जितं सम्यग् वस्तु अभीष्ट करं सदा।।१३६।।

शिष्य को चाहिए कि गुरु–मुख से प्राप्त मन्त्र को किसी और के सामने प्रकट न करे। प्रकट करने से अध्यात्म–मार्ग में उस की अवनति होती है। यदि गुरु–महाराज ने उसे अपनी खड़ाऊँ या अपनी कृपा की प्रतीक कोई अन्य वस्तु प्रदान की हो, उसे भी किसी और को नहीं दिखाना चाहिए, क्योंकि गुरु–कृपा से प्राप्त सभी वस्तुएं शिष्य के कल्याण का कारण बनती हैं।

गुरु-त्यागात् भवेत् मृत्युः मन्त्र-त्यागाद् दरिद्रता।
गुरु-मंत्र-परित्यागी रौरवं नरकं व्रजेत् ।।१४०।।

अपने सद्गुरु को छोड़ देने से शिष्य की मौत हो जाती है। अपने इष्ट मंत्र को छोड़ देने से गरीबी आ घेरती है।

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

गुरु को चाहिए कि इन लोगों को कभी शिष्य न बनाए। हाँ, जो शिष्य पाप का विरोध करता हो, धर्मात्मा हो – उसे अवश्य ज्ञान का उपदेश करना चाहिए, शिष्य बनाना चाहिए।

सत् शिष्यैः गुरवः सेव्या ऐक्य-भक्त्या विचार्य च।
न यावद् गुरु-कारुण्यं लभेत् न मोक्ष-कारणम्।१४४।

ऊपर के श्लोकों में अच्छे गुरु और अच्छे शिष्य के लक्षण बताए गए हैं। अच्छे शिष्य को चाहिए कि अच्छी तरह सोच–विचार करके अपना सद्गुरु चुने। अनन्य भक्ति से उसकी सेवा करे। क्योंकि गुरु की दया के बिना शिष्य को मुक्ति का मार्ग नहीं मिल सकता।

गकारस्तु शिवः प्रोक्त उकारो ब्रह्म चोच्यते।
रुकारस्तु रविः प्रोक्तो गुरुः सर्वार्थ-कोविदः।।१४५।।

'गुरु' शब्द का 'ग' शिव का वाचक है। 'उ' से ब्रह्म का बोध होता है। 'रु' रवि का वाचक है। इस प्रकार 'गुरु' शिव, रवि, ब्रह्म के समन्वय हैं और सर्वज्ञ हैं। वास्तव में ब्रह्म–स्वरूप गुरु सब कुछ हैं। वे सर्वकर्ता और सर्वव्यापक हैं। इस कारण सर्वज्ञ हैं।

महतां चैव भूतानां प्रलये सम् उपस्थिते।
स्वतंत्रस्तु शिवो भूत्वा संपूर्णो भवति महान्।।१४६।।

पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश (शून्य, स्पेस) ये पांच महाभूत

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

कहलाते हैं। इनसे दृश्यमान जगत के पदार्थ (जो द्रव्य या मैटर के नाना रूप हैं) बने हैं। जब प्रलय आता है तो समस्त द्रव्य (मैटर) का विकिरण (डिस–इन्टिग्रेशन) हो जाता है, और द्रव्य सूक्ष्म शक्ति–रूप में परिवर्तित हो जाता है। यह महाशक्ति शिव से अभिन्न है। इस प्रकार शिव जगत्–रूप में फैलाए अपने ही अंश को अपने में समेटते हैं। इस समय भी मुक्तात्मा साधक की आत्मा शिव से एक होकर अपनी महानता का अनुभव करती हैं।

मानव–जीवन का चरम लक्ष्य मुक्ति है। मुक्त मनुष्य एक तो जन्म – मरणसे छूटता है, दूसरे प्रलय में भी शिव से एक होकर अपने आनन्द में झूमता है। मुक्ति सद्गुरु के बिना मिल नहीं सकती।

उपदेशो ह्ययं देवि ! गुरु-मार्गेण मुक्तिदः।
गुरु-भक्तिस् तथा ध्यानं सकलं तव कीर्तितम्।।१४७।।

ध्यात्वा प्रत्यक्षं एवैतद् भजामि च वदामि च।
लोकोपकारकं देवि ! गुरुं अभ्यर्चयेत् सदा।।१४८।।

हे देवि ! मैंने तम्हें गुरु की भक्ति तथा गुरु के ध्यान के बारे में सभी बातें कहीं। ये बातें गुरु से उपदेश रूप में सुननी चाहिएं। फिर गुरु के बताए रास्ते पर चलने से मुक्ति मिलती है। इन सभी बातों का मुझे प्रत्यक्ष अनुभव है, व्यक्तिगत अनुभव है। तभी मैं तुम से कहता हूं कि केवल गुरु ही सांसारिक जीवों को मुक्ति का रास्ता दिखाकर उपकार करते हैं। इसलिए शिष्य को चाहिए कि गुरु की पूजा–अर्चना सदा करता रहे।

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

नतास्म ते नाथ ! पदारविन्दं
बुद्धीन्द्रिय-प्राण-मनो-वचोभिः।
यैः चिन्त्यते तद् हृदि भावयुक्तैर्
मुमुक्षुभिः कर्म-फल-विपाकात् ।।१४६।।

शिष्य कहे – हे नाथ (गुरुदेव) हम आप के चरणकमल को मन, बुद्धि, प्राण, तथा वचन से प्रणाम करते हैं। जब अच्छे कर्मो का फल मिलता है तो लोग मुक्ति प्राप्त करने की इच्छा करते हैं, और बड़े सम्मान से आप के चरण–कमल का हृदय में ध्यान करते हैं।

ज्ञान-प्रकाशं विभवेष्ट-दोहं
स्मराम्यहं देव-पदाब्ज-द्वन्द्वम्।
अत्यन्त-विज्ञान-मयं विशुद्धं
गुरुं चिदानन्द-घनं भजामि।।१५०।।

गुरुदेव ज्ञान का प्रकाश देते हैं। वे इच्छित विभव देने वाले हैं। मैं गुरुदेव के चरण–कमलों का स्मरण करता हूँ। गुरु विज्ञान–स्वरूप हैं। वे चेतन और आनन्द–स्वरूप हैं। वे विशुद्ध हैं। मैं उनकी सेवा करत हूँ।

श्री पार्वती उवाच

पिंडं तु किं महादेव ! पदं किं समुदाहृतम्। ?
रूपातीतं तु यद् रूपं तत् त्वं आख्याहि शंकर।।१५१।।

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

पार्वती कहती हैं – हे महादेव ! 'पिंड' किसे कहते हैं ? 'पद' क्या है ? हे शंकर! जो रूप, रूप से परे है, वह मुझे बता दें।

श्री शिव उवाच

पिंडं कुंडलिनी शक्तिः पदं हंस उदाहृतः।
रूपं बिन्दुर् इति ज्ञेयं रूपातीतो निरञ्जनः।।१५२।।

उत्तर में शिव कहते हैं – 'पिंड' कुंडलिनी शक्ति को कहते हैं। 'पद' हंस (आत्मा) का वाचक है। 'रूप' बिन्दु का वाचक है। अतः "रूपातीत" बिन्दु से अतीत होता है। वह तो स्वयं "निरञ्जन" (ब्रह्म) हैं। जीवात्मा पर कर्म करने से, तथा माया के कारण मैल सी चढ़ी रहती है। यह मैल जिस पर न हो वह निरञ्जन है। जीव ब्रह्म से भिन्न नहीं, परन्तु इस मैल के कारण असे अपना रूप नज़र नहीं आता। वह वास्तविकता समझ नहीं पाता। जब यह मैल हट जाती है, तो जीव भी निरञ्जन (ब्रह्म) बन जाता है। फिर वह रूप (आकार) की क़ैद में नहीं रहता। रूपातीत बन जाता है। ब्रह्म व्यापक हैं। जो सर्वत्र व्याप्त हो उसका रूप नहीं हो सकता।

योगियों के अनुसार कुंडलिनी साढ़े तीन वलयों वाली सूक्ष्मातिसूक्ष्म नस है। योग–साधना से यह जाग्रत होकर चतुर्दल, षट्दल, दशदल, द्वादशदल, षोडशदल, द्विदल चक्रों को पार करके सहस्रार चक्र में आ जाती है। इससे ज्ञान की आंखें खुल जाती हैं। योग की शक्ति प्राप्त हो जाती है।

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

'हंस' जीवात्मा है। सांस छोड़ते 'हं' की सूक्ष्म ध्वनि पैदा हो जाती है और सांस लेते 'स' की ध्वनि पैदा होती है। इस प्रकार जीव स्वभावतः "हंसः, हंसः" जपता रहता है। इस प्रकार हम बार–बार कहते रहते हैं "मैं वही (ब्रह्म) हूँ"। ऐसा होने पर भी जीव अज्ञान में ही रहता है। यही माया है।

रेखा गणित में बिन्दु (प्वांइट) की मोटाई, चौड़ाई, लम्बाई नहीं होती। परन्तु बिन्दुओं को साथ साथ रखें तो रेखा बन जाती है। रेखाएं साथ साथ रखें तो तल (प्लेन) बन जाता है। रूप (आकृति) इस तरह बिन्दु से ही बनता है। सर्वव्यापक ब्रह्म का रूप नहीं। अतः वह रूपातीत है, और स्पष्टतया बिन्दु से भी अतीत है।

लौकिकस्तु गुरुर् भाति भक्त्यर्थे हि परस्तु यः।
ज्ञानेन भावयेत् सर्वं कर्म निष्काम-कार्यतः।।१५३।।

गुरु दुनिया में साधारण मनुष्य दिखते हैं। जब शिष्य भक्तिपूर्वक उनकी सेवा करे, तो वे समय पर उसे महान दिखते हैं। जब शिष्य में ज्ञान का उदय हो जाता है, तो वह सारे कर्म निष्काम भाव से करता है।

यद्यपि अधीताः निगमाः षडंगाः सागमाः प्रिये।
अध्यात्मादीनि शास्त्राणि ज्ञानं नास्ति गुरुं बिना।।१५४।।

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

शिवजी पार्वती से कहते हैं – हे प्रिये ! यदि कोई चारों वेद; शिक्षा, कल्प, आदि छः वेदांग शिवसूत्र आदि आगम शास्त्र, वेदान्त दर्शन; न्याय दर्शन आदि जीवात्मा–परमात्मा–संबंधी शास्त्र भी पढ़े, तो भी तब तक उसे ज्ञान नहीं मिलता जब तक गुरु उस पर कृपा न करें। आशय यह है कि केवल शास्त्र पढ़ने से ही ज्ञान प्राप्त नहीं होता। ज्ञान–प्राप्ति के लिए गुरु धारण करना आवश्यक है।

निरस्य सर्वसंदेहं एकीकृत्य च दर्शनम्।
तपस्यन्तं रहस्यस्थं भजामि गुरुं ईश्वरम्।।१५५।।

शिष्य कहता है – मेरे सद्गुरु ने सभी दर्शनों का मंथन करके उन से सारभूत चीज़ निकाली है। यह सारभूत वस्तु सब दर्शनों में समान है। इस सार तक मेरे गुरु पहुंचें हैं। अतः उनको अध्यात्म के बारे में किसी प्रकार का संदेह नहीं। वे साक्षात् ईश्वर हैं, और सब से अलग–थलग एकान्त में तपस्या करते हैं। अर्थात् अपने अन्दर अपने सच्चे स्वरूप को देखते हुए आनन्द ले रहे हैं। मैं उनकी सेवा करता हूँ।

लौकिकात् कर्मणो याति न हि तत् परमं पदम्।
ज्ञानं च भावयेत् सर्वं कर्म निष्काम-काम्यतः।।१५६।।

शिव जी कहते हैं – लौकिक, धन–धान्य आदि प्राप्त करने के लिए किए गए सकाम कर्म हमें परम–पद (मुक्ति) की प्राप्ति नहीं करा सकते। जब ज्ञान का उदय होता है, तो साधक कर्म

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

निष्काम भाव से करता है। कर्म उसके लिए बन्धन नहीं बन जाते। इस तरह वह मुक्ति प्राप्त करता है।

गुरुगीतां इमां देवि गुरोस् तत्वार्थ-बोधिकाम्।
भव-व्याधि-विनाशाय स्वयं एव जपेत् सदा।१५७।
श्रीगीता भक्ति-भावेन पठ्यते श्रूयतेथवा।
लिखित्वा च प्रदानेन कामना सफला भवेत्।१५८।

शिव जी कहते हैं – हे देवि ! 'गुरुगीता' शास्त्र गुरु के बारे में सभी बातों का ज्ञान कराती है। साधक इसे नित्य दोहराए। इस से तत्वज्ञान प्राप्त होगा और आवागमन रूपी बीमारी से छुटकारा मिलेगा। 'गुरुगीता' कोई भक्तिपूर्वक पढ़े, भक्तिपूर्वक सुने या भक्तिपूर्वक इसकी प्रतिलिपि बनाकर किसी को दे, तो उसकी कामना सफल हो जाती है। आशय यह है कि 'गुरुगीता' में लिखित बातों का मनन करना चाहिए। इस शास्त्र का प्रचार करना चाहिए ताकि अधिक से अधिक लोग अध्यात्म–मार्ग की ओर आकृष्ट हो जाएं, और अपने मनुष्य जन्म को सफल करें।

गुरोः-गीताक्षरैः बद्धं मंत्रराजं इमं जपेत्।
अन्ये च विविधाः मन्त्राः कलां नार्हन्ति षोढ़शीम्।।१५६।।

'गुरुगीता' स्वयं एक महान मंत्र है। सदा–सर्वदा इस का जप करना चाहिए। तरह–तरह के अन्य मंत्र इस महान् मंत्र के सोलहवें भाग की भी समता नहीं कर सकते।

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

सर्व-पाप-समूहघ्नं सर्व-दारिद्र्य-वारकम्।
काले मृत्युभय-हरं सर्व-संकट-नाशकम्। १६०।।

यक्ष-राक्षस-भूतघ्नं चौर-व्याघ्र-भयापहम्।
महा-व्याधि-हरं चैव सर्वोपद्रव-नाशकम्।।१६१।।

सर्व-दुर्भिक्ष-शमनं महारोग-निवारकम्।
यत् फलं गुरु-सान्निध्यात् तत् फलं पठनाद् भवेत्।।१६२।।

'गुरुगीता' पाठ से तरह–तरह के पाप–समूह नष्ट हो जाते हैं। दरिद्रता सामने नहीं आती। समय आने पर मृत्यु के भय से भी छुटकारा मिल जाता है। किसी प्रकार का संकट सामने नहीं आ जाता। यक्ष, राक्षस, और मृतात्माएं हमको सता नहीं सकतीं। चोरों तथा बाघ आदि हिंसक जन्तुओं से भय पैदा नहीं होता। बड़ी बीमारियाँ दूर हो जाती हैं। सभी प्रकार के उपद्रव नष्ट हो जाते हैं। अकाल नहीं पड़ जाते, असाध्य रोगों से भी छुटकारा मिल जाता है। "गुरु गीता" के पाठ से वहीं फल मिलता है जो गुरु महाराज के साक्षात् दर्शन से।

अनन्त-फलं आप्नोति गुरुगीता-जपेन हि।
श्रेयसे पठतो जन्तोर् विभूतिः सर्वदा भवेत्।।१६३।।

'गुरुगीता' को बार बार दोहराने से अनन्त फल मिल जाता है। जो मनुष्य अपने कल्याण के लिए 'गुरुगीता' का पाठ करे, उसे हमेशा विभूति मिल जाती है।

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

कुशाजिनारतृतासने निश्चले निर्मले शुभे।
उपविश्य समं काये जपेद् एकाग्र-मानसः।।१६४।।

निर्मल, सुन्दर जगह कुशा या मृगचर्म का सुन्दर आसन बिछाना चाहिए। उस पर बैठ कर मेरुदंड को सीधा रखकर मन को एकाग्र करके "गुरुगीता" का जप करना चाहिए।

ध्येयं शुक्ले च शान्त्यर्थं वशे रक्तासनं प्रिये।
अभिचारे कृष्णवर्णं पीतवर्णं धनागमे।।१६५।।

मन की शान्ति के लिए जप करना हो तो सफेद आसन पर बैठकर जप करना चाहिए। किसी को वश में करना हो तो लाल आसन चाहिए। अभिचार के लिए काला आसन चाहिए। धन–लाभ के लिए पीला आसन चाहिए।

शान्त्यायुत्तरतः जाप्यं वशं पूर्व-मुखोदितम्।
दक्षिणे मारणं प्रोक्तं स्तम्भनं पश्चिमे मुखे।।१६६।।

शान्ति के लिए उत्तर की ओर मुंह करके जप करना चाहिए। शत्रुओं को नष्ट करने के लिए दक्षिण की ओर, किसी को वश करने के लिए पूर्व की ओर तथा किसी का स्तम्भन (रोकना) करने के लिए पश्चिम की ओर मुंह करके जप करना चाहिए।

मुक्तिदं सर्व-भूतानां बन्ध-मोक्षकरं परम्।
सर्व-सौख्यकरं नृणां गुरुभ्यो भक्ति-वर्धनम् ।।१६७।।

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

दुष्कर्म-नाशकं चैव सुकर्म-सिद्धिदं तथा।
असिद्धं साधयेत् सर्वं नव-ग्रह-भयापहम्।।१६८।।

"गुरुगीता" के जप से मुक्ति मिल जाती है। कारागार से छुटकारा मिल जाता है। सभी प्रकार के सुख मिल जाते हैं। गुरु की भक्ति मिल जाती है। बुरे कर्मों से मनुष्य निवृत्त होकर सत्–कर्मों में प्रवृत्त हो जाता है तथा सत्कर्मों के फल का भागी बन जाता है। जो कार्य किसी तरह सिद्ध न हो जाएं, वह भी सिद्ध हो जाते हैं। नव–ग्रहों का भय भी दूर हो जाता है। नव ग्रह बुरा फल नहीं दे सकते।

दुःस्वप्न-नाशकं चैव सुस्वप्न-फल-दायकम्।
सर्वशान्ति-करं नित्यं वन्ध्यादिष्वपि पुत्रदम्।। १६९।।

अवैधव्य-करं स्त्रीणां सौभाग्य-जननं सदा।
आयुर्-आरोग्यं ऐश्वर्य-पुत्र-पौत्र-विवर्धनम् ।।१७०।।

रोगं दुःखं भयं विघ्नं विनाश्य सुख-कारकम्।
सर्वबाधा प्रशमनं धर्मार्थ - काम-मोक्षदम्।।१७१।।

इस मंत्र के जप से बुरे स्वप्न आते ही नहीं। अच्छे स्वप्नों का फल मिल जाता है। सब प्रकार से शान्ति मिल जाती है। वंध्या स्त्रियों को भी पुत्र मिल जाते हैं। स्त्रियां सौभाग्यवती होकर चिरकाल तक अपने पतियों के साथ सुख भोगती हैं। पुत्र, पोते, ऐश्वर्य–सब प्राप्त हो जाते हैं। रोग, दुःख, भय विघ्न–सब नष्ट हो जाते हैं, और सुख ही सुख मिलता है। सब प्रकार की

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

बाधाएं दूर हो जाती हैं तथा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष – इन चारों पुरुषार्थों की प्राप्ति हो जाती है।

यत् यत् कामयते कर्मी तत् तद् आप्नोति निश्चितम्।
कामदं कामधेनुश्च कल्पितं कल्पवृक्षकम्।।१७२।।

चिन्तामणिं चिन्तितस्य सर्व-मंगल-दायकम्।
लिखित्वा दापयेद् देवि श्रेयः परं अवाप्नुयात्।।१७३।।

"गुरुगीता" का जप करने वाला जो भी कुछ चाहे, प्राप्त करता है। इस में कोई संदेह नहीं। कामधेनु की तरह "गुरुगीता" हमारी सभी कामनाओं को पूर्ण करती है। यह स्वर्ग के कल्पवृक्ष की तरह सभी इच्छाओं को पूर्ण करती है। चिन्ता में डूबे लोगों के लिए यह चिन्तामणि है। सभी प्रकार के मंगल इस से प्राप्त हो जाते हैं। यदि भक्त इसकी प्रतिलिपियां सत् पात्रों को दान दें, तो बहुत कल्याण प्राप्त करता है।

कामेन जपते यो वै तस्य काम-फल-प्रदम्।
यं यं चिन्तयते कामं तं तं प्राप्नोति निश्चितम्।।१७४।।

जपन्ते शाक्त-सौराश्च शैव-गाणेश-वैष्णवाः।
सर्वेभ्यो सिद्धिदं देवि! सत्यं सत्यं न संशयः।१७५।

सकाम भाव से इसका जप किया जाए तो कामना पूर्ण हो जाती है। इस बात में कोई संदेह नहीं कि जो–जो कामना गुरु–भक्त के मन में आए वह अवश्य पूर्ण होती जाती है। किसी

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

भी संप्रदाय के लोग इसका जप कर सकते हैं – शक्ति की उपासना करने वाले, सूर्य की उपासना करने वाले, शिव की उपासना करने वाले, गणेश की उपासना करने वाले, विष्णु की उपासना करने वाले – सभी प्रकार के भक्त इस का जप करते हैं। सभी को सिद्धि मिलती है। इस में कोई शक नहीं।

अथ काम्य-जप-स्थानं कथयामि वरानने।
सागरान्ते नदीतीरे तीर्थे हरि-हरालये।।१७६।।

शक्तिदेवालये गोष्ठे सर्वदेवालये शुभे।
वटस्य धात्र्याः मूले वा तथा वृन्दावनेपि वा।।१७७।।

पवित्रे निर्मले स्थाने नित्यानुष्ठानकेपि वा।
समाहितेन मौनेन जपं एतत् समारभेत्।।१७८।।

जपेन फलं आप्नोति ह्यश्वमेध-शतस्य च।
सिद्ध्यन्ति सर्व-कार्याणि जन्म-साफल्य-हेतवे।।१७९।।

शिव जी पार्वती जी से कहते हैं – हे सुमुखि ! मैं तुम्हे अब बताऊँगा कि सकाम–भाव से जप कहाँ करना चाहिए। समुद्र या नदी के किनारे, किसी भी तीर्थ में, शिव या विष्णु के मंदिर में, शक्ति माता या अन्य किसी भी देवता के मंदिर में, गायें जहां बांधी जाती हों वहां, वटवृक्ष के नीचे, आँवले के वृक्ष के नीचे, वृन्दावन में, पवित्र निर्मल स्थान में, जहां प्रायः अनुष्ठान होता हो वहां – इन में से किसी भी जगह सावधान मन से जप करना

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

चाहिए। इस प्रकार जप करने से सौ अश्वमेध यज्ञों का फल मिलता है। सभी काम सिद्ध हो जाते हैं। जन्म सफल बन जाता है।

संसार-मल-नाशाय भव-पाश-निवृत्तये।
गुरुगीताम्भसि स्नानं कर्तव्यं साधकैः सदा।।१८०।।

साधकों को चाहिए कि संसार के मल का नाश करने के लिए और कर्मों के बंधन से छुटकारा पाने के लिए "गुरुगीता" रूपी जल में नित्य स्नान करें। 'गुरुगीता' का अनुशीलन नित्य करने से संसार का मल छूट जाता है, और कर्मफल से छुटकारा मिलता है, जिससे मनुष्य अन्त में मुक्त हो जाता है।

स्थानानि तानि सर्वाणि पवित्राणि न संशयः।
गुरवः यत्र तिष्ठन्ति सद्-असद्-ब्रह्मवित्तमाः ।।१८१।।

इस बात में संन्देह नहीं कि वह सारी जगहें पवित्र हैं जहां, सत्य क्या है, असत्य क्या है, ब्रह्म क्या है – इन बातों का ज्ञान रखने वाले गुरु लोग रहते हों।

स्मर्तव्यः सर्वदा भक्त्या गुरुः शिष्येण धीमता।
यस्य स्मरणमात्रेण पुनर्जन्म न विद्यते।।१८२।।
स एव सर्वसंपत्ति तस्मात्-संपूजयेद् गुरुम्।
गुरोस् तीर्थे वसेत् नित्यं सर्वत्र सुख-भाग् भवेत्।।१८३।।

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

बुद्धिमान् शिष्य भक्तिपूर्वक गुरु का स्मरण नित्य करे। इस प्रकार गुरु का स्मरण करने से दुबारा जन्म धारण नहीं करना पड़ता है। शिष्य की सारी सम्पत्ति केवल गुरु महाराज ही हैं। अतः उसे उनकी अच्छी तरह से पूजा करनी चाहिए। गुरु के धाम में नित्य निवास करना चाहिए फिर हर हालत में सुख ही सुख है।

समुद्रस्य यथा तोयं क्षीरे क्षीरं जले जलम्।
कुम्भे कुम्भे यथाकाशः यथात्मा परमात्मनि ।।१८४।।

यथा ज्ञानेन जीवात्मा परमात्मनि वै तथा।
ऐक्येन रमते ज्ञानी 'गुरुगीता'-जपेन हि।।१८५।।

समुद्र का पानी, पानी के साथ पानी और दूध के साथ दूध बनकर रह जाता है। घड़े में रहने वाला आकाश घड़ा टूटने पर बाहर वाले महान आकाश से एक हो जाता है। ठीक इसी प्रकार 'गुरुगीता' के अनुशीलन से ज्ञान प्राप्त करके जीवात्मा परमात्मा के साथ एक होकर आनन्द में रहती है।

गुरुगीता-समं नान्यत् नान्यत् तत्त्वं गुरोः परम्।
गुरोः परतरं नान्यत् सत्यं उक्तं वरानने।।१८६।।

हे सुमुखि ! मैं तुम्हे सत्य कहता हूँ कि 'गुरुगीता' की समता करने वाला कोई शास्त्र नहीं। गुरु से बढ़कर और कुछ भी नहीं है। गुरु सब से महान् हैं, और "गुरुगीता" सबसे बड़ा शास्त्र है।

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

अनेक-जन्म-विहिताः यज्ञ-दान-तपः-क्रियाः।
सर्वाः सफलतां यान्ति गुरोः सन्तोष-मात्रतः।।१८७।।

मनुष्य अनेक जन्मों में तपस्या, यज्ञ, दान आदि क्रिया करे, तो भी गुरु की प्रसन्नता की आवश्यकता पड़ती है। गुरु प्रसन्न हो जाएं, तो सभी क्रियाएँ फल देती हैं, अन्यथा नहीं।

इदं रहस्यं परमं तवाग्रे कथितं मया।
देयं सुगोप्यं शिष्याय गुरु-सेवारताय वै।।१८८।।

यह ज्ञान बहुत ही गोपनीय है तुम्हारे प्रेम के कारण मैंने तुम्हें बता दिया। सभी प्रकार के लोग इस ज्ञान के अधिकारी नहीं। जो शिष्य पात्र हो, गुरु की सेवा करने वाला हो, उसी को यह ज्ञान देना चाहिए, और किसी को नहीं।

अतीव-बुद्धि-प्राचुर्य-गुरु-भक्तिमते सते।
मंत्र-राजं इदं गुह्यं दातव्यं केवलं प्रिये।।१८९।।

'गुरुगीता' मंत्रराज है और बहुत ही गोपनीय है। हे प्रिये ! इसका अधिकारी वही शिष्य है जिस में बुद्धि की प्रचुरता हो और जो गुरु का अनन्य भक्त हो। केवल उसी शिष्य को इस का उपदेश देना चाहिए।

गुरु-मंत्रं मुखे यस्य तस्य सिद्धिर्भवेद् ध्रुवं।
दीक्षया सर्वकर्माणि सिद्ध्यन्तिगुरुपुत्रके।।१९०।।

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

गुरु द्वारा उपदिष्ट मंत्र जिसकी जिह्वा पर हमेशा रहता है, अर्थात्, जो गुरु से प्राप्त इष्ट मंत्र का जप करता रहता है, उसे अवश्य सिद्धि मिलती है। गुरु द्वारा दिए गए उपदेश के अनुसार साधना करने वाले शिष्य के सभी कार्य सिद्ध होते हैं।

गुरु-भावः परं तीर्थं अन्यत् तीर्थं निरर्थकम्।
तेनैव मुच्यते शिष्यो घोर-संसार-बंधनात्।।१६१।।

विद्या धनं बलं दानं भाग्यं तेषां निरर्थकम्।
सर्वदा ये न कुर्वन्ति गुरुसेवां वरानने।।१६२।।

गुरु स्वयं महान् तीर्थ हैं। अर्थात् मनुष्य यदि गुरु के पास बैठे तो तीर्थों में जाना आवश्यक नहीं। बाकी तीर्थ बेकार हैं, बशर्ते कि शिष्य गुरु के चरणों में बैठे। संसार के बंधन केवल तीर्थों में जाने से नहीं हटते। हाँ, गुरु की सेवा की जाए, तो बंधन अवश्य हटते हैं। हे सुमुखि ! जो लोग अपने गुरु की सेवा नहीं करते उनकी विद्या, उनका धन, बल, दान, भाग्य–सब बेकार हैं।

गुरवो बहवः सन्ति शिष्य-वित्तापहारकाः।
स गुरुः दुर्लभो देवि ! शिष्य-संताप-हारकः।।१६३।।

महादेव कहते हैं – हे देवि ! शिष्य का धन लूटने वाले बहुत गुरु मिलते हैं। परन्तु शिष्य को सच्चा ज्ञान देकर उसका संताप–हरण करने वाले गुरु बहुत दुर्लभ हैं।

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

यस्य प्रसादाद् अहमेव सर्वं,
मयैव सर्वं परिकल्पितं च।
इत्थं विजानामि सदात्मरूपं
तस्यांघ्रि-पद्मं प्रणतोस्मि नित्यम् ।।१६४।।

गुरु महाराज के प्रसाद से मैं अनुभव करता हूँ कि मैं ही सारा विश्व हूँ और मैंने ही इस दृश्यमान जगत् की सभी चीज़ों की सृष्टि की हैं; अतः ये चीज़ें मेरा ही स्वरूप हैं। मेरे अतिरिक्त दूसरी कोई चीज़ है ही नहीं। इस प्रकार का आत्मज्ञान कराने वाले गुरुदेव के चरण–कमलों को मैं प्रणाम करता हूँ।

संसार-सागर-समुद्धरणैक-मंत्रं
ब्रह्मादि-देव-मुनि-पूजित-सिद्ध-मंत्रम्।
दारिद्र्य-दुःख-भय-शोक-विनाश-मंत्रं
वन्दे महाभय-हरं-गुरुराज-मंत्रम्।।१६५।।

"गुरुगीता" मंत्र संसार–रूपी समुद्र को पार करने के लिए एकमात्र साधन है। ब्रह्मा आदि देवता, ऋषि–मुनि इस सिद्ध मंत्र की पूजा करते हैं। यही मंत्र दरिद्रता, दुख, भय और शोक नष्ट करने वाला है, और महाभय को दूर करने वाला है। मैं इस गुरु महाराज से संबद्ध मंत्र को प्रणाम करता हूँ।

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

सम्पादक द्वितीय (संशोधित) संस्करण
प्रो० जानकी नाथ शर्मा

प्रकाशक :- भगवान श्रीगोपीनाथ जी ट्रस्ट (रजिस्टर्ड)

मुखपृष्ठ :- श्री जी० आर० सन्तोष

प्रथम संस्करण :- फरवरी, १९८७

द्वितीय (संशोधित) संस्करण : जुलाई, २०००

मूल्य :- २० रु०

मुद्रक :- बी० बी० ग्राफिक प्रिंटर

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com

"श्री गुरुगीता" एक प्राचीन शास्त्र है। इस में स्वयं भगवान शंकर ने जगज्जननी पार्वती जी के साथ एक संवाद में सद्गुरु के लक्षण, उनका महत्व, शिष्य का उन के प्रति व्यवहार, उन के पूजन का महत्व, उन की स्तुति–इन सभी विषयों पर प्रकाश डाला है।

"श्रीगुरुगीता" में गुरु–शिष्य–सम्बन्ध पर प्रकाश डाला गया है। सद्गुरु की कृपा के बिना शिष्य आध्यात्मिक मार्ग पर प्रगति नहीं कर सकता।

"श्रीगुरुगीता" के पाठ से शिष्य को महा पुण्य तथा सद्गुरु की महती कृपा प्राप्त होती है।

PDF created with FinePrint pdfFactory Pro trial version www.pdffactory.com